ज्ञानामृत अगस्त, 1987 वर्ष 23 ❋ अंक 2 मूल्य 1.75

"पवित्र बन विश्व को सहयोग दो"

रक्षाबंधन पर दादी प्रकाशमणि जी का संदेश—

देश और संसार की वर्तमान स्थिति का मूल्यांकन करते हुए यह कहना उचित एवं सामयिक होगा कि पवित्रता अथवा चारित्रिक निर्मलता ही आज की सभी समस्याओं का समाधान है। ये समस्याएं राजनीतिक हों, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक या अन्य किसी प्रकार की, किन्तु जहां कहीं भी कुछ गड़बड़ है, वह चारित्रिक दुर्बलता ही के कारण है। अत: रक्षाबंधन के पुनीत पर्व पर देश अथवा संसार के सभी नर-नारियों से मैं कहूंगी कि वे रक्षाबंधन को पवित्रता के व्रत अथवा दृढ़ संकल्प का स्मृति दिवस मानते हुए रक्षा-सूत्र को पवित्रता की दृढ़ प्रतिज्ञा के रूप में मनाएं और इस प्रकार विश्व-परिवर्तन की ईश्वरीय योजना में अपना सहयोग दें। बहनें अपने भाइयों को पवित्रता ही की प्रेरणा देते हुए उन्हें पवित्रता की राखी बांधें। पवित्रता ही सुख-शांति की जननी है। ऐसा पवित्र रक्षाबंधन सभी को मुबारिक हो -

नई दिल्ली: भारत के नव-निर्वाचित राष्ट्रपति माननीय आर. वेंकटरामन को बधाई देती हुई ब्रह्माकुमारी आशा बहन। साथ में ब्रह्माकुमारी चक्रधारी तथा अन्य।

अमृतसर: प्रोफेसर दर्शन सिंह रागी, मुख्य ग्रंथी स्वर्ण मंदिर, अमृतसर के साथ 'विश्व-शांति' पर चर्चा करती हुई ब्र.कु. राज बहिन। अन्य भाई-बहनें शांति सागर शिव परमात्मा की स्मृति में बैठे हैं।

माऊंट आबू: जयपुर से जनजाति उत्थान कमेटी के सदस्य पाण्डव भवन में मुख्य प्रशासिका ब्र.कु. दादी प्रकाशमणि तथा अन्य मुख्य भाई-बहिनों के साथ।

माऊंट आबू: राजयोग शिविर में भाग लेने आए कुछ स्वतंत्र सैनानी, दादी प्रकाशमणि, दादी चन्द्रमणि तथा अन्य भाई-बहिनों के साथ।

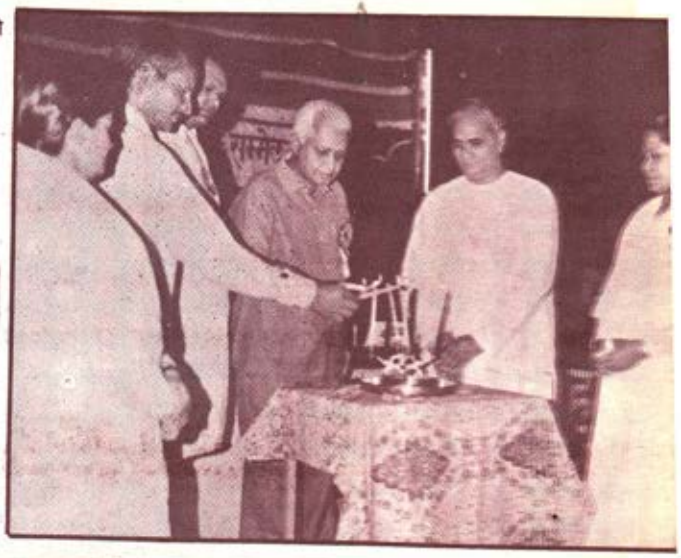

राजगढ़: मानव विकास आध्यात्मिक सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए जिला एवं सत्र न्यायाधीश भ्राता रवि वर्मा, ब्र.कु. ओमप्रकाश जी, भ्राता हरिचरण तिवारी, भ्राता मनोहर सिंह जी, ब्र.कु. जयंति एवं विमला बहन।

देहली: साउथ एक्सटेंशन सेवाकेंद्र पर 'स्नेह-मिलन' के कार्यक्रम में पधारे विभिन्न लोकसभा सदस्य, स्थानीय सेवाकेंद्र संचालिका ब्र.कु. शांति बहन तथा ब्र.कु. गीता बहन के साथ दिखाई दे रहे हैं।

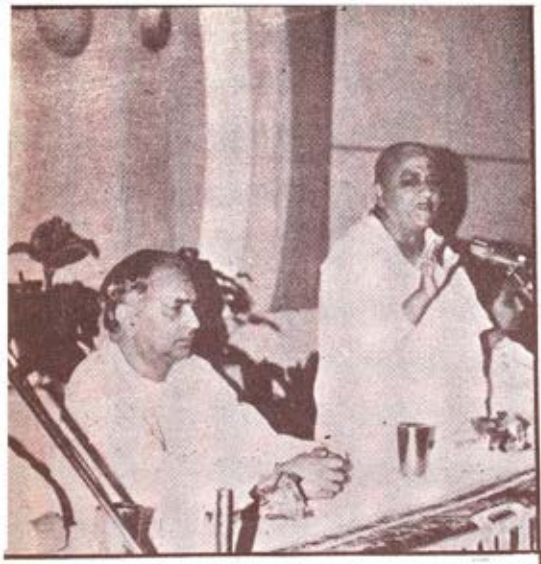

न्यूपलासिया स्थित ओमशांति भवन में 'स्नेह-मिलन' कार्यक्रम में मंच पर ब्र.कु. बिमला, ब्र.कु. ओमप्रकाश, ब्र.कु. हृदयमोहिनी तथा ब्र.कु. चक्रधारी दिखाई दे रहे हैं।

माऊंट आबू: आंध्र प्रदेश विधानसभा के अध्यक्ष, ब्र.कु.ई. विश्वविद्यालय के मुख्यालय में पधारे। ज्ञान चर्चा के पश्चात् मुख्य प्रशासिका दादी प्रकाशमणि जी के साथ दिखाई दे रहे हैं।

(नेपाल): नेपाल के सुप्रसिद्ध संत जगदाचार्य श्री १००८ नेपाली बाबा य सेवाकेंद्र के प्रांगण में ब्र.कु. भाई-बहिनों के साथ दिखाई दे रहे हैं।

बम्बई (गामदेवी): सेवाकेंद्र पर महाराष्ट्र राज्य की स्वास्थ्य मंत्री बहन रजनी जी पधारीं। चित्र में दादी शीलइन्द्रा जी, ऊषा बहन तथा कुसुम उनके साथ दिखाई दे रही है।

मान्डया: में ब्र.कु.ई. विश्वविद्यालय के नए सेवाकेंद्र के उद्घाटन अवसर पर शिवध्वजारोहण के पूर्व सभी भाई-बहिनें ईश्वरीय मधुर-स्मृति में खड़े हैं।

"रक्षाबंधन"
पवित्रता की प्रतिज्ञा का त्यौहार

रक्षाबंधन पर ब्र.कु. दादी जानकी जी का संदेश—

रक्षाबंधन के अवसर पर रक्षा-सूत्र बांधने की प्रथा के पीछे एक बहुत बड़ा दर्शन छिपा है। यह रक्षा-सूत्र या तो बहनें अपने भाइयों की कलाई पर बांधा करती थीं या ब्राह्मण ही अपने यजमानों को मौली के रूप में बांधा करते थे। ब्राह्मण जब अपने यजमानों को यह सूत्र बांधते थे तो संस्कृत में यही कहा करते कि यह सूत्र इन्द्राणी ने इन्द्र को बांधा था जिसके फलस्वरूप इन्द्र की विजय हुई थी। इस कथन के पीछे भाव यह था कि इन्द्रियों पर विजय प्राप्ति द्वारा इन्द्र अथवा देवता बनने के लक्ष्य की पूर्ति के लिए यह सूत्र बांधना जरूरी है।

सूत्र तो मात्र सूचक है। यह तो किसी धार्मिक व्रत अथवा दृढ़ संकल्प लेने का प्रतीक मात्र है। इसे बांधने के पीछे दार्शनिक तथ्य तो यह है कि मनुष्य से देवता बनने के लिए इन्द्रिय नियंत्रण का व्रत लेना जरूरी है। इससे ही पांचों विकारों पर हमारी विजय निश्चित है। गोया रक्षा-सूत्र स्वयं को पवित्रता के बंधन में बांधने का परिचायक है। यही कारण है कि यह सूत्र दशानन अथवा रावणवध के द्योतक, दशहरे तक कलाई पर रखा जाता है और इसीलिए यह ब्राह्मण या बहन द्वारा बंधवाया जाता है।

रक्षाबंधन के इस अनुपम रहस्य को सामने रखते हुए, मैं सभी बहनों और भाइयों को यह शुभ ईश्वरीय संदेश देना चाहती हूं कि आज की विकट परिस्थिति में, जबकि ऐन्द्रिय दासता के कारण संसार में दुःख एवं अशान्ति व्याप्त है, हरेक नर-नारी को चाहिए कि वह इस दिन संसार को सुखमय बनाने के लिए पवित्रता का दृढ़ संकल्प करे क्योंकि पवित्रता ही सुख-शांति की जननी है। □

अमृत-सूची

१.	रक्षाबंधन—पवित्रता की प्रतिज्ञा का त्योहार	... १
२.	प्रश्न सद्गुणों का (सम्पादकीय)	... २
३.	विश्व की बागडोर किनके हाथों में	... ५
४.	राखी: बंधन है स्वतंत्रता का	... ८
५.	मोह-ममता कैसे छोड़ें ?	...११
६.	भगवान का मातृवत प्रेम	...१३
७.	आत्मबोध ही स्वतंत्रता का यथार्थ भाव है	...१५
८.	धरा का वास्तविक स्वर्गाश्रम	...१७
९.	रक्षाबंधन का वास्तविक रहस्य	...१८
१०.	अहिंसा	...१९
११.	भगवान कौन और मानव जीवन का लक्ष्य क्या है ?	...२०
१२.	मैं कौन हूं ? क्या शरीर से भिन्न आत्मा नाम की कोई चीज है ?	...२१
१३.	कर्मयोग से विश्व-परिवर्तन	...२४
१४.	योग का अर्थ क्या है और भारत का वास्तविक एवं प्राचीन योग कौन-सा है ?	...२५
१५.	आध्यात्मिक सेवा समाचार	...२६
१६.	आया कितना पर्व सुहाना	...३२

ज्ञानामृत का वार्षिक शुल्क	**२० रूपये**
अर्द्धवार्षिक	**११ रूपये**
आजीवन सदस्यता	**२५० रूपये**

शुल्क केवल 'ज्ञानामृत' 'GYAN AMRIT' के नाम भेजें।

व्यवस्थापक
'ज्ञानामृत'

बी-९/१९ कृष्णानगर, देहली - ११० ०५१

अद्भुत परंतु सत्य !

यह ज्ञानामृत पत्रिका आप पहली बार ही नहीं पढ़ रहे। परंतु आपने आज से ५००० वर्ष पूर्व इसी वर्ष का, यही अंक इसी दिन, इसी समय, इसी ही वातावरण में पढ़ा था, अब पढ़ रहे हैं और हर ५००० वर्ष के बाद फिर से पढ़ेंगे क्योंकि इस अविनाशी अनादि ड्रामा की हर ५००० वर्ष बाद हुबहू पुनरावृत्ति होती है। □

प्रश्न सद्गुणों का

इस जीवन में कई ऐसी परिस्थितियां आ जाती हैं जिनमें विभिन्न प्रकार के दैवी गुणों का आपस में आमना-सामना होता है और मनुष्य को चुनना पड़ता है कि वह किस दिव्य गुण को मुख्यता दे । मान लीजिए कि हमसे कोई अन्याय करता है। हमारी उपेक्षा और अवहेलना करता है । हमें कई प्रकार के सुअवसरों से वंचित करता है अथवा हमारी प्रगति में जाने-अंजाने प्रत्यक्ष (direct) अथवा परोक्ष (indirect) रीति-से बाधा बनता है या कम-से-कम हमारी बजाए दूसरों को आगे बढ़ाने की कोशिश करता है यद्यपि वे योग्यताएं स्वयं हममें अथवा अन्यान्य में भी हैं जिनकी भी जाने-अंजाने अवहेलना होती है । ऐसी परिस्थिति में दो प्रकार के दिव्य गुण सामने आते हैं । एक ओर यह विचार आ सकता है कि सहन करो । सहनशीलता से आत्मा का बल बढ़ेगा । किसी दूसरे की भूल अथवा उसके निकृष्ट कर्म को मत देखो । (See no evil)। नकारात्मक (Negative) मत सोचो । जो कुछ भी होता है, उसे अपने पूर्व जन्मों का फल समझो । इसे सृष्टि-ड्रामा की भावी समझते हुए साक्षी होकर देखो । जो होता है, होता रहे, तुम निश्चिंत रहो । सभी आत्माएं अपूर्ण हैं उनकी कम्पलेंट (शिकायत) न करके तुम स्वयं को सम्पूर्ण (Complete) बनाने का पुरुषार्थ करो । देहधारी आत्माओं की तरफ ध्यान न देकर सदा बाबा की ओर देखो ।

दूसरी ओर मन में यह विचार आ सकता है कि यह अन्याय, अव्यवस्था अथवा प्राशासनिक त्रुटि है और इसमें सुधार होना चाहिए । इसे सहन करना अव्यवस्था अथवा त्रुटि को बढ़ावा देना है । इसे सहन करना सहनशीलता रूपी सद्गुण नहीं बल्कि साहस का अभाव है और "मैं दूसरों को कहीं अप्रिय न लगूं"—इस प्रकार का भय है । यह किसी देहधारी को देखने की बात नहीं बल्कि किसी की अक्षमता, अकुशलता अथवा सांस्कारिक त्रुटि से हो रहे अनर्थ को ठीक करने की दिव्य चेष्टा है, संसार को भला बनाने की शुभ भावना है और संसार से अन्याय को समाप्त करने का दृढ़-संकल्प है । किसी के साथ जो अन्याय हो रहा है, उसके साथ यह सहानुभूति है और सहानुभूति का होना मानवीय कर्त्तव्य है। इसमें भाग्यवादिता की बजाए कर्मठता, क्रियाशीलता समस्याओं को ठीक करने की भावना, आंखें मूंद लेने की बजाए जागृत होकर विघ्न-विनाशक बनने का संकल्प है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस समस्या के होने पर एक पक्ष कहता है कि सहनशील बनो, किसी के अवगुण न देखो बल्कि स्वयं सम्पूर्ण बनो । ड्रामा की भावी और कर्म सिद्धांत को सामने रखो आदि-आदि । और ज्ञान का दूसरा पक्ष कहता है कि संसार और समाज को बेहतर बनाने की सेवा करो । साहस धारण करो, परिस्थितियों का सामना करो, विघ्न-विनाशक बनो आदि-आदि । इस प्रकार दोनों ओर दिव्य गुण ही आपस में सामना करते हुए दिखाई देते हैं । ऐसा लगता है कि अगर सहन करते हैं तो साहस मर जाता है, विघ्न का विनाश नहीं होता, बुराई न मिटकर पनपती है । इसके विपरीत यदि हम साहस करते हैं तो हमारी असंतुष्टता प्रगट होती है । हम प्रयत्न बुराई को दूर करने का करते हैं परंतु वह व्यक्ति ही हमसे दूर होने लगता है। हम न्याय स्थापन करना चाहते हैं परंतु दूसरा व्यक्ति हमें अपना विरोधी मानकर एक के साथ अन्याय करते हुए हमारे साथ विरोध और करने लग पड़ता है। प्रतीत ऐसा होता है कि अगर हम दोनों में से कोई एक भी दिव्य गुण धारण करते हैं तो दूसरी ओर कोई-न-कोई बुराई उपजती है।

अतः प्रश्न उठता है कि क्या दिव्य गुणों में भी कोई मुख्य और कोई गौण है—कई परमावश्यक (Basic), कई आवश्यक (Compulsory) और कई वैकल्पिक (Optional) अथवा अनावश्यक हैं । जब किसी के साथ अन्याय होता है, तब हम उसके साथ सहानुभूति करें, साहस धारण करें, सहयोग दें या सहन करते हुए अपनी साधना को तेज करें ?

इस विषय में एक और बात ध्यान देने के योग्य है। वह यह कि जो विपरीत परिस्थितियां पैदा होती हैं अथवा विघ्न हमारे सामने आते हैं, वे किसी के मनोविकार ही से पैदा हुए होते हैं । उदाहरण के तौर पर, अगर कोई अन्याय करता है तो अवश्य ही वह पक्षपात करता है या जिसके साथ वह अन्याय करता है, उसके साथ उसका द्वेष-भाव है । अगर कोई अंजाने से अन्याय करता है, तो उसका कारण यह हो सकता है कि वह आलस्य करता है अथवा उपेक्षा करता है; वह इस बात का प्रयत्न नहीं करता कि वह थोड़ा परिश्रम करके यह मालूम कर ले कि जिस

व्यक्ति को वह बार-बार प्रगति का सुअवसर देता है, उस जैसी योग्यताओं वाला कोई और भी अधिकारी (Deserving) व्यक्ति है या नहीं । कम-से-कम अन्याय करने वाले व्यक्ति को इतना तो मालूम होना ही चाहिए कि वह अन्य योग्य व्यक्तियों की जो बार-बार अवहेलना या उपेक्षा करता है, उससे वह दूसरे को उसके अधिकार से वंचित करता है और उसके जीवन के सफल होने में रुकावट-सा बना हुआ है। बाबा ने कहा हुआ है कि चांस Chance) लेने से व्यक्ति चांसलर (Chancellor) बनता है। अत: अगर कोई व्यक्ति किसी को चांस से वंचित करता है तो गोया वह उसके चांसलर बनने में रुकावट डालता है। इससे स्पष्ट है कि अगर कोई अंजाने से भी किसी के साथ अन्याय करता है तो उसका यह अंजानापन भी दूसरे के लिए तो घातक जैसा ही है । तो प्रश्न उठता है कि योग्य व्यक्तियों का इस प्रकार से अपने अधिकार से वंचित होते रहने के सिलसिले को बंद तो करना ही होगा न । जब हम जानते हैं कि यह पक्षपात से, द्वेष से, आलस्य से या अन्य किसी त्रुटि से ही पैदा होता है तो क्या उसका सुधार आवंश्यक नहीं ।

अगर यह कहा जा सकता है कि जिसके साथ अन्याय हो रहा है, उसके कर्मों की गति या हिसाब-किताब ऐसा ही होगा, तब यह भी तो कहा जा सकता है कि जो व्यक्ति अन्याय कर रहा है वही अब निकृष्ट कर्म कर रहा है और नया हिसाब-किताब जोड़ रहा है। सदा यही क्यूं कहा जाए कि जिसके साथ अन्याय हो रहा है, दोष उसके कर्मों का है ? यह क्यों न कहा जाए कि जो अन्याय कर रहा है, दोष उसके कर्मों का है?

यह बात ठीक है कि किसी के अवगुण को न देखा जाए । संसार के हरेक व्यक्ति में कुछ-न-कुछ अवगुण है। हम उनके अवगुणों का नहीं देखते । परंतु हम यह तो कहते हैं कि अब कलियुग है, माया का राज्य है, चहुं ओर अंधकार है । क्या इसका यह भाव नहीं हुआ कि भले ही हम किसी व्यक्ति के अवगुण न देखें परंतु सभी में अवगुण देखते हुए क्या हम यह नहीं मानते कि यह धर्म ग्लानि अथवा गुणों के ह्रास का समय है ? यह जानकर कि यह आसुरी सम्पदा है, हम उनके कुसंग से बचते हैं या उनको सतसंग के द्वारा सुधारते हैं। अगर हम इस ओर ध्यान ही न दें कि संसार में दुर्गुणों का दौर चल रहा है तो हम उससे अपना बचाव कैसे कर सकेंगे ? अथवा उनको सुधारने की सेवा में कैसे तत्पर होंगे ? यदि हम किसी के अवगुण को देखेंगे नहीं तो उसको सुधारेंगे कैसे ?

हम लाखों-करोड़ों व्यक्तियों के तो अवगुण नहीं देखते परंतु जब किसी के दुर्गुण का डंडा हमारे अपने सिर पर लगता है तब तो वह स्वत: ही दिखाई देता है । आगे के लिए तो हर कोई उससे बचाव करना ही चाहता है। उदाहरण के तौर पर हमें कोई पानी मिला दूध देता है । क्या हम उसके इस अवगुण को नहीं देखेंगे ? जब हमारी अपनी ही खेती में से कोई फ़सल काट कर ले जाने का यत्न करता है, कोई हमारे घर में जगते हुए बल्ब को पत्थर मारकर तोड़ देना चाहता है तो क्या हम उसकी इस हरकत पर ध्यान नहीं देते ? हम उस समस्या का कैसे समाधान करते हैं ? वह अलग बात है, परंतु हम उसे समस्या तो मानते हैं और उसे समस्या मानने में हमारा ध्यान उस दूसरे की हरकत की तरफ जरूर जाता है।

हमने ऊपर एक ही प्रकार का उदाहरण दिया है। केवल अन्याय से पैदा होने वाली परिस्थिति में दो प्रकार के दिव्य गुणों में जो संघर्ष उत्पन्न हो सकता है, उसी का उल्लेख किया है। ऐसा संघर्ष अनेक प्रकार की परिस्थितियों में अलग-अलग रूप से हो सकता है। प्रश्न यह है कि ऐसी परिस्थितियों में क्या किया जाए ?

लेख कुछ अधिक विस्तृत हो गया है। अत: संक्षेप में ही बताना ठीक होगा ।

निश्चय ही यदि कहीं अन्याय होता है तो उसे तत्काल अथवा भविष्य में रोकने के लिए प्रयत्न किए जाने में कोई आपत्ति नहीं है । अगर कोई जानबूझकर अन्याय करता है तो भी स्थिति का सुधार करने से एक तो उनका भला होगा जिसके साथ अन्याय होने की सम्भावना होगी और दूसरे उसका भी भला होगा जो पक्षपात, द्वेष अथवा अपने किसी भी हीन संस्कार के कारण अन्याय करने में प्रवृत्त है। उसके अन्याय की प्रवृत्ति का संशोधन करने से वह भी बुरे कर्मों से बच जाएगा और स्वयं हमारे द्वारा भी एक अच्छी सेवा हो जाएगी । परंतु इसमें मुख्यत: 4 बातों का ध्यान रखना जरूरी है—

1. अन्याय न हो—इसके लिए प्रयत्न करते हुए हमें यह भी ख्याल रखना चाहिए कि जहां हम न्याय, साहस, सहानुभूति इत्यादि दिव्य गुण धारण कर रहे हैं, वहां हम भी अन्यायकर्त्ता के प्रति घृणा, द्वेष, क्रोध, अशुभ भावना से उत्प्रेरित न हों अथवा उकसाए न जाएं । यदि हम इन कुत्सित भावों के वशीभूत होकर स्ट्राइक, गुटबंदी, घृणा फैलाने के कुप्रयास इत्यादि में फंस जाते हैं तो गोया हम एक दुर्गुण को दूर करते-करते अन्य दुर्गुणों को बढ़ावा देने लग जाते हैं । स्वत: सिद्ध है कि हमारा यह तरीका गलत है। यदि हम कटुता को छोड़कर मधुरता, घृणा को छोड़कर स्नेह, दुर्भावना को छोड़कर सद्भावना को मन में रखते हुए अन्याय का अंत करने का प्रयत्न करते हैं तो निश्चय ही

डरपोक बनकर सहन करने वाले अथवा कोरे भाग्यवादी व्यक्ति से हमारा पुरुषार्थ अच्छा है।

2. दूसरी बात यह है कि कई बार परिस्थिति ऐसी भी होती है कि उस बात को उस समय सहन करने में कल्याण होता है। सभी के सामने किसी का अपमान न करने, अमर्यादा फैलाने के निमित्त न बनने या इस बात की खोज़ पड़ताल करने कि किसी ने जानबूझकर अन्याय किया भी है या नहीं, या जिस द्वारा अन्याय हुआ, पहले स्वयं उसी से दिव्यतापूर्ण बातचीत करने के लिए कई बार सहन भी कर लेना पड़ता है। गोया वहां साहस को प्रधानता न देकर सहनशीलता को मुख्यता देनी पड़ती है। और दूसरों के प्रति सन्मान और स्नेह और सम्बंधों में मर्यादा को प्रधानता देना आवश्यक होता है। इनको व्यवहार में न लाने से संसार में मर्यादा नष्ट होती है, संघर्ष बढ़ता है, मन-मुटाव और मलिनता को बढ़ावा मिलता है । अत: अनेक परिस्थितियों में सामना करने की बजाए समाने के गुण को व्यवहार में अपनाना श्रेयस्कर होता है।

3. तीसरे, हमें यह भी ख्याल रखना चाहिए कि आज संसार में कहीं अन्याय हो रहा है तो कहीं असत्यता का व्यवहार, कहीं वैर-विरोध तो कहीं कटुता और कड़ी आलोचना । यदि हम इन सबको ठीक करने का ठेका अपने ऊपर ले लें तो हम साधना और योगाभ्यास को छोड़ बैठेंगे । आसुरीयता से जूझते-जूझते स्वयं हमारे जीवन में दिव्यता नष्ट होने लगेगी क्योंकि दिव्यता को जन्म और पोषण देने वाला जो योग है, उसी की ओर से हमारा ध्यान हट जाएगा और हमारा अधिकतर समय अपने जीवन में सम्पूर्णता लाने के प्रयास से परे होकर दूसरों ही को सुधारने की चेष्टा में लग जाएगा ।

4. हमें यह भी ख्याल रखना चाहिए कि कई बार केवल साहस ही नहीं, धीरज़ और संतोष भी धारण करना पड़ता है। किसी ने भूल से कोई बात कर दी तो उसकी उस भूल को भुला देना भी गुण है। धीरज़ का फल मीठा होता है और संतोष से स्थिति ठीक बनी रहती है। धीरज, संतोष, मधुरता, सद्भावना और सहनशीलता को धारण करते हुए परिस्थिति का सामना करना, सुधार करना अथवा परिवर्तन करना—यही श्रेष्ठ पुरुषार्थ है।

इन बातों का ध्यान रखने से अधिकांश सद्गुण बने रहते हैं और हमारे अपने जीवन में भी आसुरीयता का प्रवेश नहीं होता । केवल सहनशीलता अधूरी है, केवल साहस भी अधूरा है और इनमें से किसी के साथ यदि कोई दुर्गुण मिल जाए तो बात और भी खराब है । अपने ही स्वार्थ को सामने रखते हुए साहस न करना और केवल सहन कर लेना अथवा अपने ही स्वार्थ के कारण सामना करना और सहनशीलता को बिल्कुल छोड़ देना—यह भी गलत है। सबका भला हो—उसमें हमारा भी भला हो—और उसके लिए हम सद्गुणों को अपनाते हुए विघ्न को विनाश और परिस्थति को परिवर्तन करें—यही सर्वश्रेष्ठ पुरुषार्थ है।

—जगदीश

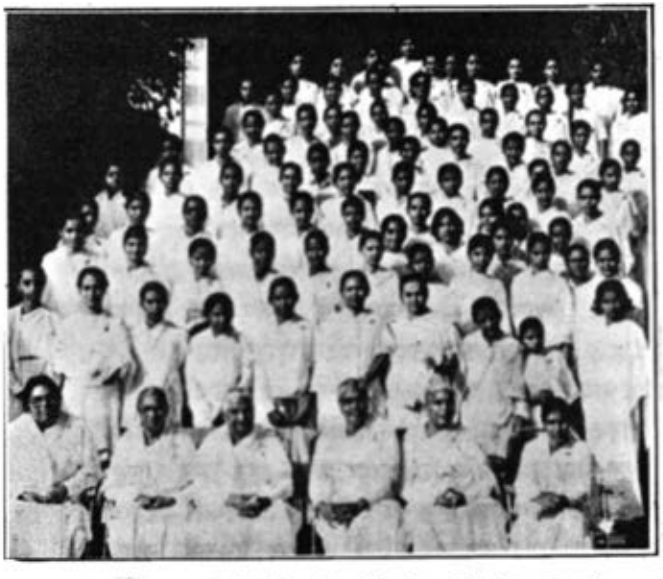

आबू पर्वत: महाराष्ट्र ज़ोन से पधारीं बहिनें प्रशिक्षण लेने के पश्चात् दादी प्रकाशमणि तथा अन्य शिक्षिकाओं के साथ।

बालेश्वर: स्थानीय सेवाकेंद्र के वार्षिकोत्सव के कार्यक्रम में ब्रह्माकुमारी उषा बहन 'चरित्र निर्माण' पर प्रकाश डालती हुई।

विश्व की बागडोर किनके हाथों में....

—बी.के. सूरज कुमार, माउंट आबू—

विश्व के डगमगाते कदम किसी दिव्य पुरुष का इन्तजार कर रहे हैं। अग्नि-परीक्षा से गुजरता, हमारा ये कराहता विश्व शीघ्र ही अग्नि-प्रक्षेपास्त्रों की भेंट चढ़ जाएगा, परन्तु उसके बाद क्या होगा? सृष्टि पर स्वर्णिम सूर्य का उदय, स्वर्णिम युग का प्रारम्भ। २१ वीं सदी हम सबके लिए सुखमय संसार का सन्देश लेकर आ रही है परन्तु उससे पूर्व २० वीं सदी का अन्त कितना भयावह होगा, इसकी कल्पना अभी तक भी मनुष्य नहीं कर रहा। उसने अपने सिर पर काल का आह्वान किया है और उसे अब इसके लिए तैयार हो जाना चाहिए।

काम और भ्रष्टाचार के विषैले नालों में स्नान करते हुए मनुष्य का उद्धार अब ये एटम बम ही करेंगे। और जो महान् आत्माएं काम को भस्म करके दिव्य रूप धारण कर लेंगी, वे ही नवयुग का संचालन करेंगी। श्रेष्ठ युग का अधिकार श्रेष्ठ मनुष्यों को ही प्राप्त होगा, कलियुगी मनुष्यों को नहीं। मनुष्य को दिव्य बनाने का दिव्य कार्य स्वयं सर्वशक्तिवान् ने राजयोग सिखाकर किया है और सर्व शक्तियों से सम्पन्न आत्माएं ही विश्व पर एक छत्र राज्य करेंगी। उनकी प्रभुसत्ता सभी को मान्य होगी और कोई ऐसी शक्ति ही नहीं होगी जो उनकी ओर आँख उठाकर देख भी सके।

यह सत्य विश्व में प्रख्यात होता जा रहा है कि अब शीघ्र ही भारत एक महान शक्ति के रूप में उभर कर ऊपर आयेगा। भारत की प्रभुसत्ता सभी को स्वीकार करनी होगी। परन्तु यह कैसे होगा? इस रहस्य को ब्रह्मा-वत्स ही जानते हैं। संक्षेप में यों कहें कि अब शीघ्र ही इस सृष्टि से समस्त आसुरी सम्पदा का विनाश हो जाएगा। निकट भविष्य में आने वाले कुछ वर्ष सभी को काल के मुँह में डालने वाले होंगे। सृष्टि पर विनाश की भयंकर लीला होगी और सभी को अपने पापों के फल भोगने पड़ेंगे। तत्पश्चात् प्रकृति शान्त होगी और नवयुग का निर्माण करेगी। देवताओं का आगमन धरा पर होगा जो बड़े होकर समस्त विश्व की बागडोर संभालेंगे।

मनुष्य को देव बनाने वाले परमात्मा एक अद्भुत विधि से संसार का परिवर्तन कर रहे हैं। वे आने वाले नवयुग के सम्पूर्ण विधिविधान और वहाँ के राज्य-अधिकारियों का भी निर्माण कर रहे हैं। तो प्रस्तुत चर्चा में हम ईश्वरीय महावाक्यों के आधार पर यह स्पष्ट करेंगे कि सतयुग व त्रेतायुग के विश्व महाराजन कौन बनेंगे, उनकी योग्यताएँ यहाँ क्या-क्या होंगी, आदि आदि....?

विश्व-महाराजन बनने वालों के लक्षण

● वे सम्पूर्ण शक्तिशाली होंगे। सर्व-शक्तियाँ सदा ही उनके पास उपस्थित रहेंगी। उन्हें किसी भी शक्ति का अभाव महसूस नहीं होगा। और इन शक्तियों के बल से वे जो चाहेंगे कर सकेंगे।

● वे हर बात में पूर्णत: निर्भीक होंगे। माया का भय, भविष्य का भय या हार, अपमान, टीका टिप्पणी, ईर्ष्या-द्वेष आदि का भय उन्हें विचलित नहीं करेगा।

● उनके प्रत्येक कर्म, बोल, संस्कार व व्यवहार में पूर्ण रॉयल्टी होगी। अपशब्द, निन्दनीय कर्म व निम्न कोटि के संस्कार व व्यवहार उनमें दृष्टिगोचर नहीं होंगे।

● वे पूर्णतया धैर्यचित्त व गम्भीर चित्त होंगे। शीघ्र ही अधीर्य या बाह्यमुखी हो जाना — यह कमजोरी उनमें नहीं होगी।

● उनकी निर्णय-शक्ति अति श्रेष्ठ होगी। इसके लिए उनके पास सम्पूर्ण व स्पष्ट विवेक होगा। स्वयं भी सम्पूर्ण बनने के लिए उन्हें किसी के सहयोग की आवश्यकता नहीं होगी। प्रत्येक श्रीमत का पालन करने में वे पूर्ण सक्षम होंगे।

● उनकी बुद्धि का झुकाव किसी व्यक्ति व वैभव की ओर नहीं होगा।

● वे पूर्ण उदारचित्त अर्थात् विशाल दिल होंगे। मन में सदा ही देने की भावना रहेगी। किसी से कुछ लेने की सूक्ष्म कामना उनमें नहीं होगी। उनसे पितृवत् स्नेह व सहयोग प्राप्त होता रहेगा।

ऊपर हमने ऐसी महानात्माओं के कुछ लक्षण गिनाये। अब हम उनकी वर्तमान में स्थिति, अभ्यास व धारणाओं पर प्रकाश डालेंगे।

सतयुग व त्रेता के राज्य-अधिकारियों में अन्तर

सृष्टि पर जनसंख्या धीरे-धीरे वृद्धि को प्राप्त होगी। सतयुग में देवताओं की संख्या कम व त्रेता में अधिक होगी। सतयुग सतो प्रधान विश्व है व त्रेता सतो सामान्य विश्व। तो वे महानात्माएं जो सेवा तो बहुत करेंगी, अर्थात् अपनी प्रजा तो बहुत रचेंगी परंतु स्थिति में सतोप्रधान नहीं बनेंगी – त्रेता युग के राज्य अधिकारी बनेंगी। और जो आत्माएं अपनी स्थिति को भी सम्पूर्ण व सतोप्रधान बना लेंगी और सेवा के सभी सूक्ष्म रूपों को अपनाकर सेवा में सम्पूर्ण सहयोगी बनेंगी – सतयुग के विश्व महाराजन पद को प्राप्त करेंगी।

जो यहाँ के राजे, वे ही वहाँ के राजे

वर्तमान में ही हम भविष्य के संस्कार भरते हैं, परन्तु संस्कार सूक्ष्म शक्ति है। कई लोग इसका यह गलत अर्थ लगाते हैं कि जो आत्माएं यहां अनेक सेवाकेन्द्रों का संचालन करती हैं, वे ही वहां विश्व का संचालन करेंगी। सत्यता तो यह है कि जो यहाँ स्वयं के राजे बनेंगे, वे सतयुग के राजे और जो यहाँ केवल दूसरों के राजे बनेंगे, स्वयं के नहीं, वे वहाँ त्रेता के राजे बनेंगे।

यह सत्य प्रत्यक्ष दृष्टि गोचर होता हैं कि जो महान योगी मन, बुद्धि व सर्व कर्मेन्द्रियों पर राज्य करते हैं, उन्हें दूसरों पर आदेश नहीं चलाना पड़ता, बल्कि सहज ही सब उनके स्नेही व सहयोगी बन जाते हैं। और जो स्वयं पर राज्य नहीं करते बल्कि अधिकारीपन से दूसरों पर आदेश चलाते हैं, उनके आदेशों को कोई भी मन से स्वीकार नहीं करता।

तो विश्व पर राज्य करने की कला, स्वयं पर राज्य करने से ही प्राप्त होती है। यदि कोई योगी स्वयं पर राज्य करने में असमर्थ है, तो चाहे वह कितना भी प्रसिद्ध हो, उसे विश्व-महाराजन बनने के स्वप्न नहीं देखने चाहिएं। क्योंकि जो स्वयं पर राज्य कर सकता है, वही दूसरों पर भी सफलता पूर्वक राज्य कर सकता है।

प्रकृति-जीत ही विश्व जीत

जो महान योगी इस पंचतत्व निर्मित देह व इसकी कर्मेन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर लेंगे वे ही सतयुगी सतो-प्रधान प्रकृति के भी मालिक होंगे। परन्तु यदि स्वयं की या दूसरों की देह, आत्मा को खींचती है तो वह आत्मा शक्तिशाली नहीं कहलायेगी और ऐसी कमज़ोर आत्मा जिस पर दूसरे राज्य करते हों, भला विश्व पर राज्य कैसे करेगी?

व्याधि काल में भी यदि देह आत्मा को स्वस्थिति से नीचे लाती है तो स्पष्ट है कि देह की मालिक आत्मा, देह-प्रकृति के अधीन है। कर्मेन्द्रियाँ यदि आत्मा (राजा) को नचाने लगें तो भला ऐसे को कौन विश्व-महाराजन् मानेगा। अतः जिसने देह व कर्मेन्द्रियों रूपी प्रकृति को अधीन कर लिया है, अर्थात् अपना सेवक बना लिया है यहाँ भी प्रकृति अपने ऐसे मालिक की सेवा करती है और उसके आदेशों का पालन करती है और ऐसी शक्तिशाली आत्मा ही विश्व-अधिकारी बनने की अधिकारी है।

उन्हें यहाँ ही सब अपना राजन् स्वीकार करेंगे

जैसे वर्तमान प्रजातंत्र प्रणाली में सत्ताधारियों को सर्वाधिक जन समर्थन प्राप्त होता है। ठीक इसी प्रकार भविष्य विश्व-महाराजन् बनने वालों को उनकी होवनहार प्रजा यहीं अपना राजन् स्वीकार कर लेगी। और यह तब ही होगा जब प्रजा अपने राजा की ऐसी दिव्य स्थिति देखेगी। सम्पूर्ण भावी प्रजा के मन में अपने राजा के प्रति पूर्ण स्नेह, सहयोग व सम्मान की भावना होगी।

परन्तु यदि किसी उम्मीदवार विश्व-महाराजन् को अनेक आत्माएँ अपना राजन् स्वीकार नहीं करतीं, यदि वे उन्हें महान् व योग्य नहीं मानतीं, यदि वे उन्हें दिल से स्वीकार नहीं करतीं तो उन्हें अपनी स्थिति को और महान, निरहंकारी व योग-युक्त बनाना चाहिए, तब ही वे अपनी भावी प्रजा का समर्थन प्राप्त कर सकेंगे अन्यथा ये समर्थन किसी अन्य अधिकारी को चला जाएगा।

काम जीते, जगत जीत

यह प्रसिद्ध उक्ति यहाँ शत प्रतिशत चरितार्थ होती है, क्योंकि काम विकार मनुष्य को सबसे अधिक गुलाम बनाता है। यही मनुष्य की शक्तियों को नष्ट करता है, मन, बुद्धि को निर्बल बनाता है। अतः शक्तिशाली बनने के लिए इस महा बैरी को जीतना परमावश्यक है। काम पर विजय होने से मनुष्य को पवित्रता का परमश्रेष्ठ बल प्राप्त होता है, उसमें निर्भयता आती है और दिव्यता चेहरे पर तेज के रूप में प्रकट होती है। ऐसी आत्मा को ही सब अपना इष्ट व भावी महाराजन स्वीकार करते हैं।

तीन बलों से सम्पन्न आत्मा ही विश्व-महाराजन

'मन्सा-बल, वाचा बल व कर्मणा-बल' – इन तीनों बलों से युक्त आत्माएं ही विश्व अधिकारी बनेंगी। उनकी मन्सा का बल अर्थात् साइलेन्स पावर बहुत श्रेष्ठ होगी। श्रेष्ठ व शक्तिशाली संकल्प सदा ही मन को आनन्दित करते रहेंगे। उनका मन कभी भी माया की ओर झुकाव अनुभव नहीं करेगा। उनका मन कभी डाँवाडोल भी नहीं होगा।

इसी प्रकार उनका प्रत्येक बोल दूसरों पर प्रभाव डालने वाला व अनुभव कराने वाला होगा। साधारण व कमज़ोर बोल वे नहीं बोलेंगे। उनकी वाचा का प्रभाव अति प्रसिद्ध होगा। उनके एक-एक बोल सुनने के लिए लोग लालायित रहेंगे। इसी तरह उनके कर्म भी अनुकरणीय होंगे। सभी उनके कर्मों की प्रशंसा करते होंगे। यदि इन तीन बलों में से एक की भी कमी है तो ऐसी आत्मा को आदि काल का राज्य अधिकार प्राप्त नहीं होगा।

विश्व कल्याणकारी ही विश्व-महाराजन

जिन महान पुरुषों ने मन, वचन, कर्म, तन, धन, दृष्टि, वृत्ति से विश्व कल्याण का कार्य सम्पन्न किया होगा, उन्हें ही विश्व-महाराजन् बनने का अधिकार मिलेगा। विश्व-महाराजन् बनने वाली आत्मा का सहयोग, किसी न किसी प्रकार से सबको ही प्राप्त होगा।

जिसकी दृष्टि में भी किसी के लिए नफ़रत न हो, जिसकी वृत्ति भी सभी के लिए सुखदाई हो, जिसकी भावनाओं में सभी के लिए समभाव हो, स्नेह भाव हो, जो कभी किसी का बुरा न सोचता हो, किसी के अधिकार न छीनता हो, जो सदैव दूसरों की प्रगति के बारे में चिन्तन करता हो – वही विश्व महाराजन् बनने योग्य है।

बेगर से प्रिन्स (Beggar to Prince)

जो महान तपस्वी इतने तक त्यागी बन जाते हैं कि 'मेरा कुछ भी नहीं' और जिनकी आसक्ति कहीं भी नहीं जाती। इस प्रकार जो स्वयं में ही पूर्ण संतुष्ट व आनन्दित होंगे, जिनकी तपस्या सम्पूर्ण सृष्टि का सहारा बन जाती है और जिनकी सेवा सभी में सेवा भाव जागृत करती है – वही भावी विश्व की बागडोर सम्भालेंगे। क्योंकि वर्तमान की सेवा जन्म-जन्म की सेवा से मुक्त करती है। तो इस प्रकार नम्रता पूर्वक त्याग, तपस्या व सेवा भाव धारण करने वालों को ही विश्व अपना राज्य-अधिकारी चुनेगा।

तो संक्षेप में यों कहें कि श्रेष्ठ स्वभाव में स्थित आत्मा ही इस सम्मानीय पद को प्राप्त करेगी। जो आत्मा राजा बनकर इस भ्रकुटि रूपी सिंहासन पर बैठकर, मन बुद्धि सहित समस्त कर्मेन्द्रियों पर राज्य करेगी, वही वहाँ सिंहासन को प्राप्त करेगी। यह सिंहासन सिंह का आसन है। राजा सिंह की तरह ही निर्भीक होता है। तो सदा निर्भीक होकर, माया के राज्य में निर्लिप्त होकर विचरण करने वाली आत्मा ही विश्व-अधिकारी बनेगी। यहाँ दिखावे का या बाह्य पदों का कोई स्थान नहीं है, जो शक्तिशाली आत्माएं रावण राज्य को समाप्त करने में सम्पूर्ण कार्य करेंगी वे ही स्वर्ग के महाराजन बनेंगी। और विनाश काल में होवनहार विश्व-महाराजन यहीं प्रत्यक्ष हो जाएंगे तथा प्रजा यहीं पर उनके ऊपर पुष्प वर्षा करेगी।

विसनगर: तालुका में सरपंचों की मीटिंग के अवसर पर ब्र.कु. तृप्ति 'सर्व के सहयोग से सुखमय संसार' कार्यक्रम के बारे में प्रवचन करती हुई।

राखी: बन्धन है स्वतंत्रता का

□ब्र.कु. अवतार, माउंट आबू

यह तो सार्वभौमिक सत्य है कि ये भारत जहां अनश्वर खंड है वहीं इस पुनीत देवभूमि के महत्व का गुणगान भी सारी दुनिया करती है। या यों कह लो कि इस देश की आध्यात्म-प्रधानता सर्वत्र व्यापक है। बस, यही कारण है कि इस देश में उत्सवों, पर्वों, और त्योहारों को विशेष ही महत्वपूर्ण स्थान उपलब्ध है।

कितनी गौरवमयी है हमारी पुरातन संस्कृति । जिसका ऐतिहासिक साहित्य गौरव गरिमा का बखान करते नहीं थकता, वह पुनीत अद्वितीय और उल्लेखनीय संस्कृति है हमारी !

पौराणिक साहित्य का कहना है कि इस राष्ट्र में कोई भी दिवस ऐसा नहीं जो किसी न किसी उत्सव, पर्व या त्योहार से विमुक्त पाया जाए । हां, कुछेक त्योहार इनमें किसी न किसी कारण कोई न कोई अपनी विशेष ही पृष्ठभूमिका लिये हुए हैं । अत: जनमानस का नाना विधि प्रणेता का रूप धारण किये हुए हैं । ऐसी पुरातन चिंतकों की देन है।

या यों कहने में भी हमें गौरव महसूस होता है कि प्राचीन चिंतकों, तत्व-दर्शियों अथवा ऋषि-महर्षियों ने इन त्योहारों को बड़े ही समाजोपयोगी ढंग-से विविध मनमोहक मधुर गाथाओं का रूप देकर इनके महत्व का उल्लेख किया है।

बस यही कारण है कि जहां हमारे प्राचीन साहित्य में आध्यात्मिकता को प्रथम स्थान उपलब्ध है वहीं हमारी संस्कृति भी देवत्व की अलौकिक गौरव गरिमा के साथ-साथ हमें समय के अनुसार—मानवीय मूल्यों की सुरक्षा हेतु ईश्वरीय मर्यादाओं की लक्ष्मण रेखा रूपी सीमा में बांधने का भागीरथ कार्य का उत्तरदायित्व की भी क्षमता रखती है।

कहने का तात्पर्य है कि प्राचीन परम्पराओं से प्रचलित इन सुमधुर त्योहारों को मनाये जाने वाली प्रथा आज भी मानवीय हितैषी श्रद्धा को परहित में अर्पण करती है।

वास्तविक अर्थों में ये त्योहार ही हमारी सुसंस्कृति एवं सुसभ्यता के अद्भुत समन्वय की अनुपम धरोहर राशि हैं किंतु विडम्बना यह है कि इस अनुपम देन पुरातन चिंतकों की धरोहर के मात्र अवशेष ही हमारे पास रह गये हैं । खैर, इसका उल्लेख करना तो यहां विषयान्तर हो जायेगा। हां, कुल मिलाकर ये त्योहार परस्पर स्नेह, सहानुभूति और सद्भावनाओं को मानव मन में पुन: उजागर करने के प्रतीक हैं ।

इस विस्तृत विश्व पर का विशाल जनसमूह जो कि विविध संस्कृतियों में पलते हुए भी समस्त भेदभावों को भुलाकर मानव को एकता के पुनीत सूत्र में बांधने के यही त्योहार जो ऐतिहासिक अनुपम देन रूपी स्वर्णिम एवं अद्वितीय अवसर हैं ।

भारतीय संस्कृति के कुछ पर्व इस प्रकार हैं—जैसे कि शिवरात्रि, होली, रक्षाबंधन, श्रीकृष्ण जयंती और दीवाली आदि-आदि ।

यों तो इन सभी त्यौहारों का अपना-अपना अलौकिक महत्व एक-दूसरे से आगे ही है । परंतु उसमें भी रक्षाबंधन की गौरव गाथा का महत्व अपने-आप में एक निराला है। अद्वितीय है। उल्लेखनीय है।

प्राचीनकाल से चली आ रही राखी बंधन की यह रस्म यों तो आज समग्र भूभाग पर बड़े ही रुचि पूर्ण और हर्षोल्लास से मनायी जाती है । यद्यपि कुछ लोगों का मत है कि यह मात्र भारतीय संस्कृति पक्ष द्वारा मान्य सिद्धांतों को महता देने वालों को ही मान्य है किंतु वास्तव में यह त्योहार आज सर्वभौमिक स्तर पर मानवीय हित में मनाये जाते हैं ।

सवाल बंधन का !

बहुत-से विदेशी संस्कृतियों में पले हुए जनसमूह के मस्तिष्क की यह उपज है कि 'राखी' शब्द तो बहुत अच्छा है किंतु इसे बंधन से क्यों जोड़ा गया है ? जबकि बंधन को मानव स्वभाव से ही अच्छा नहीं मानता है।

यों तो संसार में बंधन न जाने कितने ही प्रकार के होंगे जिनके उल्लेख मात्र से ही एक अच्छा खासा ग्रंथ बन सकने की सम्भावना है। हां, तो हमने मुख्य रूप से यहां दो बंधन लिये हैं । एक है—ईश्वरीय मर्यादाओं रूपी वरदानों का । यों तो इसे बंधन कहना ही उचित नहीं किंतु यह अति हितकारी एवं सुखदाई बंधन है। और दूसरा है—आसुरी उच्छृंखलताओं रूपी अभिशापों का । यह निश्चित है कि कर्म दोनों ही बंधनों में होते हैं, किंतु अंतर यह है कि एक बंधन के अंतर्गत किए गए कर्म मानव को राज्य तख़्त अधिकारी बना देते हैं जबकि दूसरे बंधन वाले कर्म उसे फांसी के तख़्ते पर चढ़ा देते हैं । बस, खेल सारा सुख और दु:खदाई बंधनों का है।

कहने का भाव यह है कि राखी का यह पुनीत बंधन मानवीय दुर्जेय विकारों रूपी शत्रु जिन्होंने अपनी दासता की जंजीरें उसके

सिर पर लटका ली हैं, उनकी दासता से सम्पूर्ण रूप से विमुक्त करके मानव को स्वतंत्रता दिलाता है। यानि ईश्वरीय मर्यादाओं के मानव-हितैषी सूत्र में बांधने का प्रतीक है यह रक्षाबंधन । किंतु मानवीय दयनीय दशा यह है कि इस अत्यंत ही लाभप्रद रहस्य को न जानकर मात्र प्रथा समझकर ही राखी के त्योहार को मनाने की भेड़चाल को अपनाए हैं मानव !

हां, तो आप निश्चय जानिए कि यह पुनीत बंधन समस्त दु:खद बंधनों से मानव प्राणी को विमुक्त कर देता है, यों भी इस सन्दर्भ में शास्त्रों में अनेक कहानियों में से एक वृतांत ऐसा भी आता है कि कहते हैं जब बलराम इस पृथ्वी लोक से अन्य किसी लोक को गया तो तब भूलोक पर के मनुष्यों के लिए एक रक्षा सूत्र दे गया था। कालांतर में इसी प्रथा के प्रचलन का नाम रक्षाबंधन के रूप में विख्यात हुआ ।

एक किम्वदंती के अनुसार देवाधिपति इंद्र पर जब विपत्ति आयी तो देव सम्राट की धर्म पत्नी ने भी इंद्र देव जी महाराज को यही बलराम जी द्वारा दिया गया रक्षा सूत्र बांधा था। फलित उनका खोया हुआ साम्राज्य पुन: उनको प्राप्त हो गया था।

आगे चलकर द्वापर युग में इस प्रथा का प्रचलन दिनोंदिन प्रगति के पथ का अनुष्ठान करता रहा । जब-जब द्वापर युग के राजाओं पर अन्य बलिष्ट राजाओं ने आक्रमण किया तथा पराजित राजाओं की रानियों ने विजयी या समर्थ सम्राटों को स्वयं की आत्म रक्षा के लिए यही रक्षा सूत्र भेजे । जिसमें स्वयं के राज्य को पुन: प्राप्त करने या स्वयं के राज्य की रक्षा करने के संकल्प संजोए रहते थे।

बहुत से स्थानों पर तो इस सूत्र ने उनके राज्य एवं सुहाग की रक्षा का भागीरथ कार्य किया भी है, जो उन्हों की भावनाओं का प्रतिफल है। बस, यहीं से जन-जन के मन में इसके लिए आस्था बनी रहने के लिए खुला स्थान मिल गया ।

इस प्रकार इस सूत्र ने आस्था-वादियों के हृदय में स्थान पाकर स्वयं की ख्याति बनाए रखने का अद्‌भुत कार्य किया और श्रद्धा-वादियों के सन्ताप हरे ।

अब रही बात भाई और बहिन के परस्पर सम्बंध की, सो मेरे ख्याल में अखिल विश्व में बहिन और भाई जैसा पवित्रतम् स्नेह अन्य किसी भी सम्बंध में होना असम्भव है। बस यही कारण है कि अपने उस अति स्नेहमय और अद्वितीय सम्बंध को अपनाए बहिना की आन पर न्यौछावर हो जाने को तत्पर रहता है, भाई।

इन्हीं भावनाओं का प्रतिफल है कि आज जहां अन्य त्योहारों ने विकृत रूप धारण कर लिया है वहीं इसी पवित्र पर्व की परम्परा की मर्यादाओं की जड़ें अत्यधिक गहराती जाती हैं ।

कहने का अभिप्राय: यह है कि इस पर्व का महत्व समय के साथ-साथ प्रगति के पथ पर है। जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण यह है कि हफ्तों पूर्व से ही प्रत्येक भाई उस प्यारी बहिना के कमल हस्त द्वारा इस सूत्र को अपनी कलाई पर बंधवाने के लिए प्रतीक्षा रत्त रहता है, आतुर रहता है और छटपटाता है।

न जाने कितनी भावनाओं को लिए नाना विधि संकल्पों को पाले अपने अंतर्मन में उस प्रतीक्षा में रत्त रहता है कि कब राखी का वह पर्व आये और उसे एक साथ बारह सूर्य उदय होते दृष्टिगत हों।

यानि वह प्यारी बहिना उसके समक्ष खड़ी हो उसकी आशाओं के दीप रूपी राखी को अपने कमल हस्तों में लिए, भाई को कलाई अपनी ओर बढ़ाने का संकेत कर रही हो । और वह भाई अपनी बहिन के उस अगाध स्नेह रूपी पुनीत सूत्र को स्वयं की कलाई पर बंधवा कर अपने को धन्य-धन्य माने।

बात रक्षा की !

निस्संदेह ही राखी का त्योहार भाई और बहिन के बीच एक स्नेह, सहानुभूति, अपनत्व और नाना विधि अंतर-निहित शुभ-भावनाओं की अद्वितीय कड़ी है।

आहा ! कितना सुखकारी है यह पवित्रतम् पर्व किंतु अब एक सवाल इस मस्तिष्क में जो बार-बार उभरता है वह यह है कि इस राखी का जो दूसरा नाम है रक्षा वह किस सम्बोधन का प्रतीक है ? यदि बहिन-भाई से अपनी रक्षा के संकल्प को मन में पालकर राखी बांधती है तो यह प्रसंग भी कुछ युक्ति-संगत नहीं लगा ।

कारण कि अगर एक बहिन अपने भाई को गोद में बिठाकर राखी बांधती है तो भला उस भाई से आन की रक्षा का प्रश्न कहां तक मान्य हो सकता है ? या किसी बहिन का भाई शारीरिक दृष्टि-से अति निर्बल है तो भला उसे रक्षा की क्या आश.. ?

यदि राखी बांधना मात्र बहिन की आन की रक्षा का सूचक है तो भला उन भाइयों को क्यों राखी बांधी जाती है जो इस कार्य में असमर्थ हैं ? यदि यह भौतिक रक्षा का ही द्योतक है तो क्या वे बहिनें इतनी निर्बल तथा बुद्धिहीन हैं ? जो कि अपनी आन की रक्षा हेतु भीख मांगने पर उतारू हो रही हैं ।

उपरोक्त को ध्यान में रखने से यह तो समझ में आ ही जाता है कि यह रक्षा शब्द अवश्य ही किसी अन्य भीषण आतंक से मानवीय रक्षा को कहा गया होगा । क्योंकि आज तो समाज में प्राय: यह देखने में आता है कि भाइयों की अपेक्षा तो कई बहिनें हृष्टपुष्ट और बलिष्ठ हैं ।

इसी प्रकार विवेक क्षमता एवं मौलिक सूझ-बूझ भी कई अर्थों में भाइयों से अत्यधिक बहिनों में पायी गयी है। और हां असलियत तो यह है यदि समाज में बारीकी से छानबीन की जाए तो हमें ज्ञात होगा कि आज भाई ही स्वयं को असुरक्षित महसूस कर रहे हैं ।

इसीलिए बहिनों की यादगार रूपी महानता की प्रति मूर्ति काली, दुर्गा आदि देवियों के समक्ष स्वयं की रक्षा की भीख मांगते हैं। शायद पाठक यह समझ रहे होंगे कि लेखक स्वयं ही भावनाओं में बह गया है किंतु असलियत तो असलियत ही होती है।

हां इसका तात्पर्य किन्हीं भी अर्थों में यह नहीं कि बहिनें ही मात्र स्वयं को महान् समझें और भाइयों में तुच्छ एवं हीनभावना बैठ जाये। नहीं, अपने-अपने स्थान पर एक-दूसरे की सार्थकता की महानता का कहां तक बखान करें...।

हां, तो हमारी चर्चा की पृष्ठभूमिका थी 'रक्षा' सो उपरोक्त से जहां इस अजूबे बंधन की सार्थकता सिद्ध हुई है वहीं इसके प्रति असमंजस के बीज भी अंकुरित हुए होंगे, पाठकों के मन में।

कुछ भी हो यह तो निश्चित रूप से विदित हो ही चुका है कि यह बंधन कोई भौतिक रक्षा का द्योतक नहीं है। और यह भी स्पष्टत: अवगत हो जाता है कि वास्तविक अर्थों में यही बंधन एक ऐसा बंधन है कि जो समस्त दु:खद बंधनों का जड़ नाशक बंधन है।

या यों कहने में भी अनुचित न होगा कि राखी का यह आनंददायक बंधन पवित्रता की प्रतिज्ञा का कंगन रूपी लक्ष्मण रेखा है जो कि स्वयं पवित्रता के सागर यानि पतित पावन परमपिता शिव परमात्मा की श्रीमत की प्रेरणा स्रोत है।

अत: ईश्वरीय निर्देश रूपी राखी बांधने से ही परमपिता परमात्मा द्वारा दिये जाने वाला वर्सा प्राप्त हो सकना सम्भव है। जिसका प्रतिफल जन्म-जन्मांतर के लिए दुखदाई बंधनों की समाप्ति और सम्पूर्ण सुखों की प्राप्ति है। या यों कह लो कि सम्पूर्ण सुख, शांति, आनंद और पवित्रता आपका ईश्वरीय जन्मसिद्ध अधिकार है।

बस आवश्यकता है मात्र इन मायामय मानवीय दुर्जेय शत्रुओं दुखों के मूल कारण रूपी काम-क्रोधादि विकारों की (अलौकिक राखी बांधने वाले परमात्मा को) खर्ची अथवा दान देने की । और फिर निश्चय जानिए कि राखी का वह पवित्रतम् बंधन आपके वर्तमान को सुखद एवं भविष्य के अनेक जन्मों को उज्ज्वल बनाने को प्रत्याभूत (गारंटी) करता है।

रक्षा का रहस्य भी यही है कि इन माया जनित बुराइयों के विकट आतंक से मनुष्य को बचाना है, और यह तभी सम्भव है जब स्वयं को आत्मा निश्चय कर निरंतर परमात्मा की दिव्य याद में रत्त रहेंगे।

राखी के साथ-साथ जो मस्तक पर टीका लगाए जाने की रस्म है वह इसी अर्थबोध का प्रतीक है कि मानव मूल रूप में शरीर से भिन्न उसकी यानि शरीर की संचालक आत्मा है । अत: चंदन का टीका लगाकर उसे यह स्मृति दिलाई जाती है कि वह मूल रूप में आत्मा है।

तथा आत्मिक रूप में परमात्मा की संतान होने के नाते आपस में भाई-भाई हैं । अत: उसे आत्मिक रूप में ईश्वरीय लक्षण एवं दैहिक रूप में दिव्यगुण धारण करने में पुरुषार्थ कौशल रहना है।

भाव यह कि राखी के इस अनुपम बंधन से ही मानव को सम्पूर्ण स्वतंत्रता मिल पानी सम्भव है। और हां वास्तव में स्वयं शिव परमात्मा ही अपने दिव्य अवतरणकाल में दुर्जेय शत्रुओं रूपी विकारों के भयंकर आक्रमण से मानव को बचाने हेतु ये अलौकिक रक्षा सूत्र बांधते हैं ।

इस रक्षा सूत्र के बांधने के पश्चात् मानव जो स्वयं की कर्मेन्द्रियों का अधिपत्य खो बैठा है, पुन: उस स्वयं के खोये हुए राज्य को प्राप्त करने की क्षमता रखता है। यानि कि वह स्वयं की कर्मेन्द्रियों का कुशल प्रशासन करने की कला को जान जाता है। यह है संक्षेप में राखी का अलौकिक रहस्य ! □

पुरी: 'रथ उत्सव' के अवसर पर 'विश्व नव-निर्माण आध्यात्मिक प्रदर्शनी' के उद्घाटन के पश्चात् महाराज गरुडध्वजाचार्य, जी.आर. स्वामी मठ, पुरी तथा अन्य भाई-बहिनें दिखाई दे रहे हैं।

मोह-ममता कैसे छोड़ें?

ले. ब्रह्माकुमारी राज, जालन्धर

भगवान् धर्म-ग्लानि के समय अवतरित होकर मनुष्य मात्र को जो गीता-ज्ञान देता है, उसका उद्देश्य ही मनुष्य को नष्टोमोहः तथा स्मृतिर्लब्धा बनाना होता है क्योंकि मोह के कारण ही मनुष्य दुःखी होते हैं। मोह-ममता ही मनुष्य को बारम्बार गर्भ-जेल में ले जाती है और एक ऐसी दलदल में फंसा देती है कि मनुष्य निकलना चाहते हुए भी उससे निकलना मुश्किल समझता है। जैसे विष्ठा का कीड़ा निकृष्ट स्थान पर होते हुए भी एक सूक्ष्म एवं निकृष्ट आकर्षण में बन्धा-सा होने के कारण मोरी में पड़ा रहता है और वहाँ से निकलना नहीं चाहता वैसे ही मोह में पड़े हुए मनुष्य का भी यही हाल होता है! कफ, रक्त और हड्डी-माँस के शरीर को वह एक जोंक अथवा किलनी की तरह लगा रहता है और उससे हटाये जाने पर समझता है कि 'मैं मारा गया'। कैसा आश्चर्य है कि बार-बार भाड़ में पड़ने पर भी वह स्वयं को मोह के भार से मुक्त नहीं करता!

मोह वाला मनुष्य परमात्मा के विपरीत होता है

जब मनुष्य का अपने पुत्र-पौत्रों में, धन-दारा में, घर-घाट में अथवा अपने तन आदि में मोह होता है तो उसकी बुद्धि उन्हीं में उलझ जाती है। उसकी बुद्धि उन्हीं से प्रीति करती है और परमपिता परमात्मा से विपरीत हो जाती है और इस कारण उसे मुक्ति तथा जीवन-मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती, उसे योग का आनन्द नहीं मिलता, बल्कि अन्ते या मति सा एव गति के नियम के अनुसार उसे फिर उन्हीं सम्बन्धियों के यहां जन्म लेकर दुःख भोगना पड़ता है। वह पुनः पुनः नरकवासी होता है। इस प्रकार, मोह की रस्सियाँ यद्यपि सूक्ष्म हैं और दिखाई नहीं देती तथापि वे स्थूल रस्सियों और जंजीरों से भी अधिक कड़ी हैं और जन्म-जन्मान्तर तक नहीं टूटतीं। स्थूल रस्सियाँ तो मनुष्य को बाहर से बाँधती हैं परन्तु मोह की रस्सियां तो मनुष्य के जिगर को, उसके कोमल हृदय को, उसकी अन्तड़ियों को बन्धी होती हैं, परन्तु आश्चर्य तो यह है कि फिर भी वह इन रस्सियों से छूटने की पूरी कोशिश नहीं करता!

मोह से मृत्यु

मोह वाला मनुष्य सत्य-असत्य में न तो निर्णय कर पाता है और न ही मृत्यु पर विजय प्राप्त कर पाता है बल्कि मृत्यु से पहले भी वह कई बार ममता के मारे मरता है। अतः मोह भले ही दिखाई देने में छोटा विकार है परन्तु वास्तव में वह सबसे खोटा है। इसलिए भगवान् कहते हैं कि अब मोह को नष्ट करके अर्थात् अन्यान्य से बुद्धि को हटा कर स्मृतिर्लब्धा हो जाओ, अब बुद्धि में मेरी स्मृति को धारण करो।

मोह का कारण और उसका निवारण

मनुष्य मोह उससे करता है जिससे कि वह कुछ लाभ समझता है। बिना लाभ या स्वार्थ के मनुष्य किसी से भी मोह नहीं करता। जो चीज़ अथवा जो व्यक्ति मनुष्य को हानिकर अथवा दुःखदायी मालूम हो, उससे तो मनुष्य घृणा करने लग जाता है अथवा उसे तो वह त्याग देता है। मनुष्य जब समझता है कि अमुक व्यक्ति मेरा सहारा है अथवा अमुक व्यक्ति से मेरा फलाँ कार्य सिद्ध होगा तो वह उससे ममता का नाता जोड़ लेता है, या तो जिस चीज़ को वह स्वयं रचता है, उसमें उसकी ममता या उसका मोह होता है। परन्तु जबकि मनुष्य की अपनी देह भी उससे छूट जाने वाली है तो सोचना चाहिए कि जिनसे मैं मोह-ममता कर रहा हूँ, वह भी मुझसे छूटने ही हैं, तब भला उनसे मोह कैसा? जबकि इस संसार में सब चीजें अस्थिर, परिवर्तनशील और विनाशी हैं तो उन परिणामी चीजों में मोह करना तो गोया स्वयं को दुःखी करने की युक्ति रचना है। अतः परमपिता परमात्मा कहते हैं कि यह माया मोह दुःख देते हैं, अब इनको छोड़ो।

मोह-ममता को कैसे छोड़ें

कई लोग कहते हैं कि – 'हम तो मोह को छोड़ना चाहते हैं परन्तु मोह हमें नहीं छोड़ता।' परन्तु उनका यह कथन तो ऐसा ही है जैसा कि उस तोते का जिसके बारे में एक लघु कथा इस प्रकार है कि वृक्ष की टहनी को पकड़

कर वह बैठा हुआ था और कह रहा था – 'अरे कोई मुझे इससे छुड़ाए!' उसके इस आलाप को सुनकर किसी समझदार मनुष्य ने उससे कहा – 'अरे शुक, टहनी को पकड़ तो तुमने स्वयं ही रखा है, इसलिए तुम स्वयं ही उसे छोड़ दो ना? अरे शुक, तुम इन्हें छोड़ोगे तभी तो यह छूटेगी।' इसी प्रकार, आज मनुष्य ने अपने मोह रूपी पंजे से व्यक्तियों और वस्तुओं को पकड़ तो स्वयं ही रक्खा है परंतु कहता है कि मुझे इनसे कोई छुड़ाये!!

ऐसे ही मनुष्य के लिए अब परमपिता परमात्मा कहते हैं कि – 'हे वत्स, यह अन्तिम जन्म है,अब तो केवल दो घड़ियों का खेल बाकी है। अब विनाश की आग भड़क रही है जिसमें सब का अन्त हो जाना है। अतः अब साहस रख कर जीते-जी पहले से ही जीवन को मेरे हवाले कर दो। यह अब छूटना तो यों भी है ही, अतः यदि आप अब न छोड़ोगे तो कुछ भी प्राप्ति नहीं होगी।'

भगवान कहते हैं – 'यों तो सभी लोग कहते हैं कि हम परमपिता परमात्मा के बच्चे हैं। परन्तु प्रैक्टीकल रीति तो उनका मुझसे कुछ भी सम्बन्ध अर्थात् योग नहीं है। मेरे साथ प्रैक्टीकल रीति से संबंध जोड़ने से ही तो मनुष्य भाग्य बनाने के योग्य बनता है, पिता के साथ प्रैक्टीकल संबंध होने से ही तो पुत्र को पैतृक संपत्ति की प्राप्ति होती है? अतः शाहों के भी शाह मुझ त्रिलोकी पति परमपिता के साथ सम्बन्ध जोड़ो तो मैं आप को जन्म-जन्मान्तर के लिए मालामाल कर दूँगा और धनवान् भी बना दूँगा। हे वत्सो ! अब मैं जिस सतयुगी सृष्टि अथवा वैकुण्ठ की स्थापना कर रहा हूँ, अब उससे मन का स्नेह जोड़ो और विनाश होने वाले इस संसार से मन को मोड़ लो क्योंकि उस सृष्टि से सम्बन्ध सुख देने वाला है! हे वत्स, अगर अपनी आसक्ति या ममता के वश अथवा कर्म-बन्धन की लागत (लगाव) से मंसा, वाचा या काया से कर्म करोगे तो उससे कुछ भी उच्च पद (देव-पद) की प्राप्ति नहीं होगी बल्कि अवस्था और ही अधिक मुरझा जायेगी क्योंकि जिस व्यक्ति में मोह की रग है या ममता का स्वभाव है, उसे 'पवित्र' नहीं कहा जा सकता और जो पवित्र नहीं है वह सम्पूर्ण सुख और शान्ति को भी प्राप्त नहीं कर सकता। अतः हे वत्स, अब जबकि कर्मातीत अवस्था को प्राप्त करना है तो आप देह के संबंधों में मन से मोह का सन्यास करके अब एक मेरा ही सहारा लो तो मैं तुम्हारी सारी ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ले लूँगा। हे वत्स, यदि अब भी कोई मनुष्य राज्य-भाग्य के दाता मुझ परमपिता से सर्व सम्बन्ध न जोड़कर बुद्धि के नाते को मुझे से तोड़ देता है तो मानो कि वह अपने भाग्य को आग लगाता है, अपनी तकदीर को लकीर लगाता है और जन्म-जन्मान्तर के लिए कमबख्त बन जाता है।'

बम्बई (गामदेवी): सेवाकेंद्र पर म्यूज़िक डॉयरेक्टर ओ.पी. नैयर पधारे थे। ब्र.कु. कुसुम उनका स्वागत करते हुए।

अफ़ज़लपुर: डॉ. एम.जे. पटेल, राष्ट्र प्रशस्ती विजेता स्थानीय सेवाकेंद्र पर पधारे चित्र में ब्र.कु. रंजना उनको श्री लक्ष्मी श्री नारायण का चित्र भेंट कर रही है।

कहानी

भगवान का मातृवत प्रेम

ले. ब्रह्माकुमारी चक्रधारी, दिल्ली

एक उपनगर में शिव दयाल नाम का एक व्यक्ति रहता था। उसका एक बेटा था जिसका नाम था सालिग्राम। सालिग्राम को उसके माता-पिता बहुत प्यार करते थे। वे उसे अपना वारिस तो समझते ही थे परन्तु उनके मन में यह आशा भी बंधी रहती थी कि सालिग्राम एक चरित्रवान, सुयोग्य, कर्म-कुशल और देव-तुल्य सुपुत्र सिद्ध हो। प्रारम्भ में सालिग्राम में ऐसे गुण थे भी । अत: शिव दयाल सालिग्राम को ऐसा सुखपूर्वक रखते कि जिससे सालिग्राम को कोई कमी महसूस नहीं होती थी। सालिग्राम की माता का नाम था अनुकम्पामय्या। अनुकम्पामय्या भी सालिग्राम को खूब प्यार-दुलार देती और उसकी सुख-सुविधा का पूरा ख्याल रखती थी।

परन्तु हुआ क्या कि सालिग्राम बुरी सोहबत में फंस गया। उसके ५-६ ऐसे दोस्त थे जो सदा उसके पीछे लगे रहते या यों कह दीजिए कि सालिग्राम ही उनको नहीं छोड़ता। या तो वे ही उसके घर आते रहते, या वह ही उनके घर जाता रहता। आखिर सालिग्राम इतना बिगड़ गया कि वह माता-पिता की इज़्ज़त का भी ख्याल न रखता; अपने कुल की श्रेष्ठता पर भी ध्यान नहीं देता। वह यह भी न सोचता कि उसके माता-पिता उसे इतना प्यार करते हैं और उन्होंने उसे इतना श्रेष्ठ पालन दिया है कि कम-से-कम उसे उनसे तो विमुख नहीं होना चाहिए। परन्तु अब वह इतना ढीठ हो चुका था कि माता-पिता से वह कह देता कि मैं अब बुरा काम नहीं करूंगा, इन दोस्तों का साथ छोड़ दूंगा और अच्छा बनूंगा। परन्तु वह करता अपनी मनमानी था।

आखिर उसके मां-बाप ने यह सोच लिया कि अब इसका बदलना बहुत कठिन है। बहुत समझाने पर भी यह मानता नहीं। वचन देकर भी यह वचन निभाता नहीं। आखिर उन्होंने यह निर्णय किया कि उसे सम्पत्ति के अधिकार से वंचित कर दिया जाए। इसके लिए उन्होंने पूरी तैयारी कर ली। माता-पिता दोनों इस बात पर कृत संकल्प हो गए कि वे अब उसे विधिपूर्वक सर्वाधिकारों से रहित कर देंगे।

एक दिन वे घर के दरवाज़े बंद कर के यही निर्णय किये हुए बैठे थे कि सालिग्राम खेल-कूद के बीच में से ही निकलकर घर की ओर लौटा। दरवाजे बंद थे परन्तु एक स्थान से उसने अन्दर झांककर देखा कि उसकी मां अनुकम्पामय्या शिव दयाल जी से कह रही थी कि मेरा बेटा सालिग्राम भटक गया है। कुसंग में फंस गया है। स्वयं मुझे यह बात अच्छी नहीं लगती है परन्तु मेरा आपसे अनुरोध है कि आप इसे जन्मसिद्ध अधिकार से पूर्णत: वंचित न करें। मुझसे अब इसका दु:ख देखा नहीं जाता। आप इसे सर्वाधिकार से वंचित कर दोगे तो आखिर इसका क्या हाल होगा ! मां का मन इस बात को गंवारा नहीं कर सकता कि बच्चे की ऐसी दु:ख-भरी हालत हो।

शिव दयाल बोले—"परन्तु उसके कर्मों की गति को कौन टाले ? 'जैसी करनी वैसी भरनी' का नियम तो अटल है।"

अनुकम्पामय्या बोली—"आप और हम पूरे हृदय से, अब इसके आने पर, इसका मार्गदर्शन करें, इसको सद्बुद्धि दें।"

शिव दयाल बोले—"मन तो मेरा भी नहीं मानता कि इसको अधिकार से वंचित किया जाए। परन्तु अधिकार की प्राप्ति के लिए भी तो योग्य होना जरूरी है। ठीक है, अब हम इसे योग्य बनाने का भगीरथ यत्न करेंगे। इसके प्रति हमारे मन में इतना प्रेम है कि कुसंग में फंसकर हमसे दूर रहने पर भी हम उसे छोड़ नहीं सकते। क्या ही अच्छा होता कि सालिग्राम हमारे मन के भाव को और प्रेम को जानने की कोशिश करता !"

सालिग्राम बाहर खड़ा यह सब सुन रहा था और वह माता-पिता के प्यार के हाव-भाव को भी देख रहा था। उनके प्रेम से उसका मन पिघल गया। वह सोचने लगा कि इतना कपूत होने पर भी ये मुझसे कितना प्यार करते हैं ! धन्य हैं ये मेरे माता-पिता। अब मैं इनके प्यार और एहसान को कभी नहीं भूलूंगा और कुसंग छोड़कर इनके साथ ही रहूंगा। जैसा ये कहेंगे, इनकी मत पर चलकर इनका नाम बुलन्द करूंगा।

उसने दरवाज़ा खटखटाया और अन्दर चला गया। माता-पिता ने उसे गले लगा लिया। दोनों की मन पसन्द बात हो गई। शिव दयाल और अनुकम्पामय्या ने कहा—"हमारी सारी सम्पत्ति के वारिस तुम हो।"

सालिग्राम ने कहा—मैं आपका वफादार और फरमांबरदार बच्चा बनूंगा।

माता-पिता के अपार प्यार से सालिग्राम का जीवन परिवर्तित हो गया और वह उनकी विरासत से मालामाल हो गया और सुख-शांति से निहाल हो गया।

वास्तव में सालिग्राम आत्मा का नाम है। दया के सागर शिव बाबा (शिव+दयाल) उसके पिता हैं। परमात्मा शिव में जब प्यार और कृपा उमड़ आते हैं तो वे सालिग्राम के प्रति मातृवत व्यवहार करते हैं। उनसे आत्माओं का दुःख देखा नहीं जाता।

सालिग्राम के ५-६ दोस्त पांच प्रसिद्ध मनोविकार और छठा आलस्य है जिनके कुसंग में फंसकर आत्मा भटक जाती है। अन्तर्मुख होकर जब आत्मा एक बार भी झांककर माता-पिता परमात्मा के अपार प्यार को देखती है तो वह अपने जीवन को परिवर्तित कर पवित्र बनती है और इस प्रकार अपने जन्म-सिद्ध अधिकार—सम्पूर्ण पवित्रता, सुख और शांति अथवा मुक्ति और जीवन्मुक्ति का अधिकार प्राप्त कर लेती है। □

पृष्ठ २० का शेष **भगवान कौन...**

हो सकेंगे, अपने जीवन के लक्ष्य को भी स्पष्ट समझ सकेंगे, धार्मिक वैमनस्य को समाप्त कर सकेंगे और विश्व की अखण्डता की ओर कदम बढ़ा सकेंगे।

हमें यह याद रखना चाहिए कि भगवान का जन्म यदि किसी शिशु रूप में होता तो भगवान को सारे विश्व का माता-पिता तथा अजन्मा न कहा जा सकता। गीता-ज्ञान देने के लिए ज्योतिस्वरूप बिंदुरूप परमात्मा का ब्रह्मा के मानवी तन में 'परकाया प्रवेश' ही उनका दिव्य एवं अलौकिक जन्म है जो कि वास्तव में जन्म नहीं बल्कि प्रवेश-मात्र है जिसके कारण ही उन्हें अजन्मा कहा जाता है। जन्माष्टमी के दिन हम अजन्मा भगवान के ऐसे दिव्य जन्म और देव-शिरोमणी श्री कृष्ण के जन्म के अलग-अलग महत्व को जानकर जन्माष्टमी मनाएं तो निश्चय ही हमारा कल्याण होगा। □

आध्यात्मिक सेवा समाचार पृष्ठ ३१ का शेष

मोरवी—सेवाकेंद्र द्वारा विश्व शांति भवन में एक स्नेह मिलन का आयोजन किया गया। कार्यक्रम में प्रमुख स्थान पर मोरवी के नगरपति भ्राता पूनमचंद कोटक जी उपस्थित थे। उनके साथ मुख्य अतिथि के रूप में ओधव जी भाई पटेल उपस्थित थे। इस कार्यक्रम में लगभग ८० प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने भाग लिया।

जलगांव—समाचार मिला है कि वहां के एक मन्दिर में आध्यात्मिक प्रदर्शनी का आयोजन किया गया। इस प्रदर्शनी को अनेक मुख्य व्यक्तियों तथा हर वर्ग के व्यक्तियों ने बहुत ध्यान से देखा तथा समझा। प्रदर्शनी के समाप्ति के समय हुए ब्रह्माकुमारी बहनों के प्रभावशाली प्रवचनों को हजारों आत्माओं ने श्रवण किया।

छतरपुर—सेवाकेंद्र की तरफ से जेल में विशेष आध्यात्मिक कार्यक्रम रखे गए। कुछ मुख्य व्यक्तियों का एक स्नेह सम्मेलन नौगांव में रखा गया। महाराजपुर तहसील में तीन दिन प्रवचन के कार्यक्रम रखे गए। इसके अलावा घुबारा, किशनगढ़, गुरसराय, दौरिया तहसीलों में भी प्रोग्राम किए गए जहां अनेक आत्माओं से सम्पर्क हुआ।

ईशनपुर (अहमदाबाद)—में सेवाकेंद्र की ओर से एक निःशुल्क रोग निदान सेवा कैम्प लगाया गया जिसमें ईशनपुर के १७ जनरल डॉक्टरों ने लगभग १२०० व्यक्तियों की प्राथमिक चिकित्सा करने के उपरान्त ४ दिन की दवाई निःशुल्क दी तथा आंख के रोगियों की आंखों को भी जांचा गया तथा जिन्हें चश्में की आवश्यकता थी, उन्हें कम कीमत पर चश्में भी प्रदान किये गये। इसके साथ ही साथ रोगियों को ईश्वरीय संदेश भी दिया जाता था, जिस कारण अनेक आत्माएं सेवाकेंद्र पर कोर्स करने आ रही हैं। गांव तथा आसपास के ४० विशिष्ट व्यक्ति भी सम्पर्क में आये हैं। सेवा की खूब लहर चल रही है। □

दैवी बहना राखी लाई

□बी.के. प्रेमकुमार, माउंट आबू

परमपिता की ओर से भैया, बंधालो ये रक्षाबंधन।
मधुर-मधुर मर्यादाओं का, लो पहनो पावन कंगन।।

●

देखो, दैवी-बहना, ये उपहार अनूठा लाई है—
दो धागों में दोनों जहां की सब खुशियां भर लाई हैं।
पवित्रता वरदान बनेगी आत्म-स्मृति का लो चन्दन...

●

खर्ची में पांच विकारों के खोटे सिक्कों का दान करो—
पवित्रता की लाज निभाना, ज्ञानामृत नित पान करो।
इन धागों में सदा समाया बाबा-मुरलियां मधुबन...

●

कहते धागे मिलकर रहना, चमको भी चमकाते रहना—
प्रेम, एकता, पवित्रता से गीत खुशी के गाते रहना।
दुआ करे बहना, बन जाओ सभी करें गायन-बन्दन... □

स्वतंत्रता दिवस पर विशेष

"आत्मबोध ही स्वतंत्रता का यथार्थ भाव है..."

□ब्र.कु. 'प्रकाश' गोकुलधाम (भोपाल)

प्रकृति की शाश्वतता व पदार्थ की अविनाशिता के नियमानुसार संसार की प्रत्येक जड़ व चेतन सत्ता जुड़कर भी पृथक होने की प्रवृत्ति रखती है । इस प्रकार हर जीव या पदार्थ का एक जीवनचक्र चलता रहता है । प्रकृति के हर कण का अपना निजी अस्तित्व है। यही कारण है कि रासायनिक क्रियाओं से बने जटिल पदार्थ का प्रत्येक अणु तथा अणु का प्रत्येक तत्व अपना निजी अस्तित्व प्राप्त करने के प्रति चेष्टावान होता है।

कम विवेकशील जीव जंतु व पक्षी भी उसी समय तक बंधन में या अधीनता में रहते हैं जब तक उनको कोई मुक्ति का अवसर नहीं मिलता । यही हाल संसार के सर्वाधिक विवेकशील प्राणी मनुष्य का भी है। वह भी मानसिक रूप से कभी भी बंधन या पराधीनता स्वीकार नहीं करता भले ही बाह्य रीति-से वह स्वार्थ सिद्धि अर्थ परिवार, समाज, देश या विश्व की अनेक सीमाओं व मर्यादाओं में क्यों न बंधा हो।

अतएव यह बात दृष्टिगत होती है कि स्वतंत्रता की चाहना स्वाभाविक है । स्वतंत्रता ही मानव की अंतिम खोज़ व अंतिम विजय है। तभी तो चैतन्य आत्मा भी सांसारिक सुख-साधनों व इंद्रियों का आधार लेकर भी उन्हें त्याग देती है व स्वतंत्र पक्षी बन उड़ जाती है।

(1) स्वतंत्रता की चाहना और प्रयास—संसार के राजनैतिक धार्मिक, सामाजिक, विज्ञानी या संन्यासी मार्गी हर व्यक्ति का प्रयास स्वतंत्रता का ही है। इन सभी ने स्वतंत्रता का भाव जहां तक समझा है वे उस आधार से स्वतंत्र बनने का प्रयास कर रहे हैं । सभी अपने-अपने क्षेत्र में अपना सर्वोच्च अस्तित्व कायम रखना चाहते हैं । जिसमें किसी का दख़ल उन्हें स्वीकार नहीं है । यथार्थ में यह मानव मन का प्राकृतिक गुण है, उसकी मौलिक चाहना है।

(अ) राजनेता व राज्याधिकारी—अपने-अपने राज्य, देश या संगठन की स्वतंत्रता हेतु अथवा अपने अधिकारों व विचारों की स्वतंत्रता की रक्षार्थ हर सम्भव प्रयास कर रहे हैं । बाहुबल व अणुशक्ति के बल से हर राष्ट्र विश्व विजयी व निष्कंटक राज्य करने की योजना बना रहा है।

(ब) धार्मिक स्वतंत्रता—धर्मनेता व धर्मवेत्ता भी जान की बाज़ी लगाकर भी धार्मिक स्वतंत्रता व धार्मिक मान्यताओं की रक्षा में तत्पर हैं । यहां तक कि अपने व्यक्तिगत स्वार्थ व प्रसिद्धि के लिए वे मानवीयता का गला घोंटने व हिंसा जैसी घटनाएं करने में भी पीछे नहीं हैं । जहां-तहां धर्म के आधार पर झगड़े हो रहे हैं तथा खून बहाया जा रहा है।

(स) सामाजिक स्वतंत्रता—इस गणतंत्र भारत में अनेकता होने के कारण हरेक समाज, संगठन या संस्थान अपनी मान्यताओं व विचारों में स्वतंत्र है । जिसके परिणाम में आपसी प्रेम व सद्भाव के स्थान पर समाज में साम्प्रदायिकता, असमानता व अराज़कता हो बढ़ रही है । हां, इस सहिष्णुता का लाभ लेकर अनेकानेक संगठन, व्यक्तिगत हितों को लेकर दूसरे सम्प्रदायों में विघटन व तोड़-फोड़ में अवश्य लगे हैं । सभी सामाजिक नेता भी अपने को अभिन्न बनाने व सर्वोच्च कहलाने के प्रतिद्वंदी बने बैठे हैं । कोरी मान्यताओं व निजी स्वार्थों के लिए मासूमों की जान लेना इन स्वतंत्र प्राणियों के लिए आसान बात हो गयी है।

(द) संन्यास मार्गी स्वतंत्रता-बनाम पलायनता — भौतिकवादी चकाचौंध से त्रस्त, समाज या परिवार से असंतुष्ट या इच्छाओं की अपूर्ति के शिकार हुए अधिकांश लोग वर्तमान समय संन्यास मार्गी बनते जा रहे हैं । वे दायित्वों और कर्तव्यों को ठुकराकर पलायनवादी नीति अपना लेते हैं । मिथ्या स्वतंत्रता पाकर वे गुफाओं व जंगलों में वास करने लग जाते हैं । या कुछ आधुनिक संन्यासी स्वतंत्र भोगविलास को ही ईश्वर प्राप्ति का साधन मानने के धोखे का शिकार बने हैं । आदर्श संन्यासी भी संसार को प्रपंच मानकर झंझट से छूटकर आत्मा को परमात्मा में विलीन कर देना ही सच्ची स्वतंत्रता व मोक्ष मानते हैं जो तर्कसंगत व व्यवहारिक नहीं लगता।

(इ) वैज्ञानिक स्वतंत्रता—आधुनिक विज्ञान का चरमोत्कर्ष व मनुष्य की बढ़ती हुई आत्मनिर्भरता ने उसे कुछ भी बनाने व कुछ भी मिटाने के लिए स्वतंत्र छोड़ दिया है। उसकी स्वतंत्रता यहां तक बढ़ गयी है कि अब वह ईश्वर को भी न मानकर मानवता की आहुति देकर चंद्रमा पर जाकर एकछत्र

राज्य करने पर तुला है । क्या स्वतंत्रता का यही भाव है ? क्या स्वतंत्रता अर्थ धरती को श्मशान बनाकर आसमान पर चिराग जलाना ही है ?

(2) स्वतंत्रता का यथार्थ भाव —स्वतंत्रता का भाव स्वतंत्र अर्थात् स्वशासन या स्वयं-सत्ता इस प्रकार लिया जा सकता है। अथवा यह कहना उचित होगा कि स्वयं पर नियंत्रण (Self Control) रखना ही सच्ची स्वतंत्रता है। जबकि इसके विपरीत संसार के सभी लोग किसी अन्य व्यक्ति, समाज, संगठन या देश के बंधनों व अतिक्रमण से मुक्ति लेना ही स्वतंत्रता समझते हैं । उदाहरणार्थ हम स्वयं को स्वतंत्र भारत का नागरिक कहलाते हैं क्योंकि हमने अथक परिश्रम व बलिदान के माध्यम से अंग्रेज़ों की वर्षों की गुलामी व अत्याचारों से मुक्ति पा ली है। परंतु यदि सूक्ष्मता से देखें तो अंग्रेज़ों से मुक्ति के बावजूद भी देश में हिंसा, लूट, व्यभिचार, नौकरशाही, अफ़सरशाही व पूंजीवाद पनपता ही जा रहा है । कुल मिलाकर समाज का कमजोर व निर्धन वर्ग धन व जनशक्ति वाले लोगों की कठपुतली बना हुआ है और आज भी दासता जहां की तहां है। परंतु यह भी परतंत्रता का स्थूल व अवास्तविक रूप ही है। **यथार्थ में तो स्वतंत्र** एवं निष्कंटक विचरण करने वाले, स्वतंत्र कहलाने वाले,शक्तिशाली व वैभवशाली लोग भी एक अदृश्य-सी दासता में जकड़े हुए हैं जो उनके ही मनोभावों में जन्म लेकर उनके ही मन में अशांति व क्षोभ फैला रही है परंतु उन स्वतंत्र पक्षियों को उस सूक्ष्म गुलामी का आभास भी नहीं है।

(3) आज का राजा भी मन का दास है—आज के राज्याधिकारी भले देश या राज्य के शासक हैं, मालिक हैं परंतु उन्हें भी अपने मन की गुलामी बजानी पड़ रही है क्योंकि स्वयं के मन को वह नियंत्रित रखने में अक्षम हैं ।फलत: मन की अधीनता न चाहते हुए भी उन्हें दुर्व्यसनों, नशीले पेय व व्यभिचार की तरफ प्रेरित कर रही है । भौतिक वासनाएं व अनियंत्रित मन की इच्छाएं उनके सुख चैन को हर रही हैं । साधन सम्पन्न होते हुए भी वे व्यथित हैं, अशांत हैं क्योंकि निज मन पर उन्हें अधिकार प्राप्त नहीं है।

(4) मनोविकार ही हमारे वास्तविक शत्रु—हमारी भूल यह है कि हम दिखायी देने वाली वस्तु या व्यक्ति या सत्ता को अपना दुश्मन समझते हैं तथा उनसे बचाव करने का पूरा प्रयास भी कर रहे हैं परंतु हमारा ध्यान स्वयं के अंदर व हर मानव मन में छिपे उन सूक्ष्म दुश्मनों पर कतई नहीं जाता जिन्होंने ही हमारी बाह्य दुश्मनी को भी जन्म दिया है तथा यथार्थ में वे ही दुख, अशांति, असंतोष मूलक हैं ।

इस प्रकार यदि गहराई से विचार करें तो हमारे मन की अपवित्रता या विकृति ही हमारे अंदर काम, क्रोध, मोह, लोभ, अहंकार, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, आलस्य आदि विकार अर्थात् (बेकार या व्यर्थ भाव) पैदा करती है और यह सूक्ष्म मनोविकार रूपी शत्रु हिंसा, अत्याचार, अनैतिकता व भेदभाव को जन्म देते हैं । युद्ध का प्रारम्भ मानसिक तल पर प्रथम होता है फिर युद्ध मैदान में लड़ा जाता है। कोई भी दुर्व्यसन या दुष्कृत्य की पृष्ठभूमि मन से तैयार होती है फिर वह कुकृत्य क्रियान्वित होता है। मन की अधीनता ही व्यभिचार, हिंसा आदि कर्म न चाहते हुए भी करा डालती है । मन की अधीनता के कारण ही पांच फुट का इंसान जानते हुए भी 3 इंच की जीवनघातक सिगरेट को नहीं छोड़ पाता । अनेक शक्तियां व योग्यताएं होते हुए भी आलस्य रूपी मनोविकार के वश मानव उनका सदुपयोग नहीं कर पाता । उसके अमूल्य जीवन का ह्रास हो जाता है। इतिहास साक्षी है कि अनेक बलशाली राजा मन की किसी छोटी-सी कमज़ोरी के कारण अथवा सुरा-सुंदरी की अधीनता के कारण अपने विशाल राज्य व जीवन से भी हाथ धो बैठे ।

(5) स्वतंत्रता का आधार पवित्रता—इस प्रकार यदि देखा जाए तो किसी भी प्रकार की बनावट, मिलावट या अपवित्रता ही हमारी अधीनता सिद्ध करती है। व्यक्ति या वस्तु में आसक्ति,किसी से लगाव, किसी से घृणा यह सब अपवित्रता के प्रकार हैं जो हमें अनेक हद के बंधनों में बांध देती है।

इस प्रकार यदि अनुभव से देखें तो पवित्रता का भाव यहां स्व अर्थात् आत्मा के मूल स्वरूप में स्थित होने या आत्मा के वास्तविक गुणों को उजागर करने से है।

प्रश्न है आत्मा के वास्तविक गुण क्या हैं ? यथार्थ म पवित्रता, सुख, शांति, दया, प्रेम आदि गुण आत्मा के वास्तविक गुण धर्म हैं या उसका पवित्र स्वरूप हैं । इन गुणों के विपरीत किसी भी भाव से किया गया कर्म मानसिक अपवित्रता या अधीनता है। अतएव इस अधीनता को समाप्त कर मनोविकारों का त्याग एवं पवित्र आत्मिक भाव में स्थित होना ही सच्ची स्वतंत्रता है। वस्तुत: हमें **'विचारों की स्वतंत्रता'** के स्थान पर **'विकारों से स्वतंत्रता'** का भाव लेना चाहिए ।

तो आइए, इस स्वतंत्रता दिवस पर हम स्वतंत्रता के यथार्थ भाव में स्थित होकर सच्ची स्वतंत्रता मनाएं और स्वतंत्रता का यह वास्तविक संदेश जन-जन तक फैलाएं। □

एक अनुभव

"धरा का वास्तविक स्वर्गाश्रम"

प्रो. उत्तमचंद जैन 'प्रेमी', पलवल (हरियाणा)

आज हमारे राष्ट्र की प्रमुख समस्याएं हैं—नैतिक पतन, साम्प्रदायिकता और अशांति। इन समस्याओं के कारण समूचे राष्ट्र में भ्रष्टाचार, व्यभिचार और व्यापक अव्यवस्था का बोलबाला है । अनगिनत धर्मपंथों, संस्थाओं और सम्प्रदायों के धर्मप्रचारकों और सुधारकों के निरंतर प्रयत्नों के होते हुए भी हमारा देश अज्ञानता और अनैतिकता के गहन अंधकार में डूबता जा रहा है । आए दिन हमारा समाज अस्त-व्यस्त होता जा रहा है । आत्म-कल्याण और राष्ट्र-कल्याण के साधनों की खोज में मैंने लगभग सम्पूर्ण देश के प्रमुख, धर्म स्थानों की यात्रा की है और राधास्वामी , निरंकारी सम्प्रदाय, युग निर्माण योजना केंद्र शांतिकुंज, श्वेताम्बर जैन धर्म, संस्था वीरायतन (नालंदा), दिगम्बर जैन संस्थाएं तथा उनके शिविर, रामकृष्ण मिशन आदि की गतिविधियों का श्रद्धापूर्वक अध्ययन किया है । इन सभी धर्मपंथों और सम्प्रदायों के सिद्धांतों के आधार तो श्रेष्ठ हैं किंतु व्यवहार में पृथकता हो गई है । अधिकांश धर्मप्रचारक जीवन-धर्म के मूल उद्देश्यों को भूलकर या तो मार्ग में ही अटक गए हैं अथवा अपने पावन सिद्धांतों को आचरण में नहीं उतार पा रहे हैं । धर्मप्रचारकों की कथनी और करनी में बहुत अंतर है। यही कारण है कि जनसमुदाय पर उनकी शिक्षाओं का स्थाई प्रभाव नहीं पड़ रहा है । कुछ सम्प्रदाय गुरु को ही परमात्मा मानकर जनजीवन को पथभ्रष्ट कर रहे हैं और गुरु कहलाने वाले लोग अपने असंख्य अनुयायियों की अंधश्रद्धा का शोषण करके धर्म के नाम पर अर्थ संग्रह कर बड़ी-बड़ी धर्म संस्थाएं व आश्रमों को स्थापित करके लोगों को सत्यपथ से विरत कर रहे हैं । हमारे देश में अधिकांश धर्मप्रचारक व्यवसायिक बन गए हैं । वे यथार्थ जीवन की अवहेलना कर अपने लच्छेदार भाषणों के माध्यम से आदर्शों की चकाचौंध उत्पन्न करके लोगों का समय और शक्ति व्यर्थ नष्ट कर रहे हैं । लोग उनके प्रवचनों को सुनकर गद्गद् कुछ क्षणों के लिए तो हो जाते हैं किंतु व्यवहार में उनकी किसी भी शिक्षा को नहीं ला पाते हैं । ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्वविद्यालय के आध्यात्मिक राजयोग शिविर में उपस्थित होने पर मुझे ऐसी अनुभूति हुई कि यह संस्था राष्ट्र की प्रमुख समस्याओं के समाधान के लिए व्यवहारिक प्रयास कर रही है। इस संस्था में ना गुरुडम है और ना ही लेशमात्र पाखंड अथवा भ्रामक प्रदर्शन । पांडवभवन,आबू पर्वत पर सभी भाई-बहनों का परिवार पवित्रता, स्नेह और सत्यनिष्ठा से ओतप्रोत है। इस संस्था के सभी कार्यकर्ता सच्चे सेवाभाव से पूर्ण समर्पित व्यक्ति हैं जिनका आचरण सम्यक चरित्र का ज्वलंत उदाहरण है। उनके विचारों, वाणी और आचरण में पूर्ण सामंजस्य है। मुझे ऐसा आभास हुआ कि इस संस्था के सभी भाई-बहन परस्पर जन्म-जन्मांतर के सम्बंधी हैं जो परमात्मा (शिवबाबा) के मुख्य आदेशों को सदैव सुनते हुए परमार्थ कार्य में भक्तिभाव से तल्लीन रहते हैं । राजयोग का लक्ष्य, आत्मा और परमात्मा का सच्चा स्वरूप, राजयोग की विधि, राजयोग के द्वारा विकारों पर विजय, राजयोग द्वारा अष्ट-शक्तियों की प्राप्ति आदि विषयों पर ब्रह्माकुमारी बहनों के द्वारा जो व्यवहारिक विवेचन किया गया उसे समझकर मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि इनके प्रवचनों में सभी धर्मों का सार निहित है । मैं समझ गया हूं कि राजयोग के पावन पथ पर अग्रसर होकर ही मैं अपने जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त कर सकता हूं ।

इस ईश्वरीय विश्वविद्यालय के प्रत्येक शिक्षक को मैंने बहुत ही आभा-सम्पन्न, अहंकार-रहित और स्नेह से पूर्ण पाया । शिविर में जिस किसी भाई व बहन के सम्पर्क में मैं आया, मैंने हरेक के व्यवहार से ऐसा अनुभव किया कि जैसे वह मेरा सहोदर भाई अथवा बहन हो जो मुझे बड़े दुलार के साथ राजयोग के पावन पथ पर साथ-साथ चलकर चलना सिखा रहा है । केंद्र पर, संग्रहालय में, भोजनशाला आदि की व्यवस्था में नियुक्त सभी भाई-बहन त्याग, ममता और स्नेह के साक्षात् अवतार हैं । ऋषिकेश में तो मैंने केवल नाम का स्वर्गाश्रम देखा था किंतु यहां मैंने धरा के वास्तविक स्वर्गाश्रम की स्थिति का अनुभव किया । केंद्र पर स्वच्छता की व्यवस्था, भोजन का प्रबन्ध तथा अन्य आवश्यक सुविधाओं की उपलब्धि आदर्श रूप में विद्यमान पाई । इतनी बड़ी संख्या में अतिथि होते हुए भी वहां पर हर समय शांत वातावरण रहता है।

इस विश्वविद्यालय में किसी भी प्रकार की औपचारिकता और धार्मिक वितण्डावाद का नामोनिशान नहीं दिखाई दिया। सभी शिवबाबा (ज्योतिस्वरूप परमशक्ति) के बच्चों के समान हैं जिनमें छोटे-बड़े, रंग-रूप अथवा जातिपाति का कोई भेद नहीं। इस विद्यालय की मुख्य शिक्षाएं निम्नलिखित हैं—

1. मनुष्य को सात्विक और संतुलित भोजन करना चाहिए।

2. मनुष्य को स्वयं को निर्दोष बच्चे के रूप में परमात्मा (शिवबाबा) का हर क्षण ध्यान रखना चाहिए।

3. राजयोग का निरंतर अभ्यास कर—काम, क्रोध, अहंकार, लोभ, मोह आदि विकारों पर धीरे-धीरे विजय प्राप्त करके स्वभाविक पावन-स्वरूप को प्राप्त करना चाहिए।

4. सहनशक्ति, समाने की शक्ति, परख-शक्ति, निर्णय-शक्ति, धैर्य-शक्ति, सहयोग-शक्ति और समेटने की शक्ति को धारण करके तदानुकूल आचरण करना चाहिए।

5. परमात्मा को ही सद्गुरु, मात-पिता तथा शक्ति-स्रोत समझना चाहिए।

6. मनुष्य को कभी भी स्वयं को दीनहीन अनुभव नहीं करना चाहिए, क्योंकि वह तो शांति-स्वरूप, आनंद-स्वरूप, सच्चिदानंद शिवबाबा की संतान है। मुझे आशा है कि यह संस्था हमारे देश के भिन्न-भिन्न मत-मतान्तरों को मानने वाले लोगों को सत्य-ज्ञान का प्रकाश देकर एक सूत्र में बांधेगी और राष्ट्र को संकीर्ण सम्प्रदायिकता और धार्मिकता के भयंकर रोग से मुक्त करेगी। ■

रक्षाबंधन का वास्तविक रहस्य

रक्षाबंधन की अलौकिकता—वर्तमान कलिकाल में जब माया पांच विकारों – काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार की प्रचंड, प्रखर, तीक्ष्ण धूप से समस्त वसुधा तप्त तवे-सी होकर तिलमिला उठती है, मानव प्राणी के मानस बाग के प्रेम, एकता, सदाचार, संयम, नियम, नैतिकता, चरित्रता और मनुष्यता रूपी पौधे शुष्क प्राय से हो जाते हैं, असहाय आकुष्ठ हो धर्म, सम्प्रदाय, मठ, मत-मतान्तर एवं अन्य मनुष्य-कृत साधनों से क्लांत, मलीन निराशा वाले मन की त्राहि-त्राहि का अन्तर्नाद गूंज उठता है तब विश्व-रचयिता परमपिता परमात्मा निराकार शिव दानवीय वृत्तियों से युक्त मनुष्यों में मानवीय गुण भर देवतुल्य गुणों, ज्ञान, प्रेम, आनंद, शांति, पवित्रता, सुख की बरसात श्रावण ऋतु सी करते हैं। आशा की पूर्णिमा का उदय होता है, विकल वसुन्धरा मनोकामनाएं पूर्ण पाकर मुदित हो उठती है। जर्जर ज़मीन उपजाऊ व कृषक हरियाली देख खुश हो उठता है। जीवात्माएं परमात्मा से मंगलमिलन मनाकर स्वयं में दिव्यगुणों को भरकर पवित्रता व ईश्वरीय नियम व मर्यादाओं की रक्षा करने का संकल्प-बंधन दृढ़ता से हाथों में बांधती व बंधाती हैं। श्रावण पूर्णिमा पर इस त्योहार को मनाने का यही तो रहस्य है। निराकार शिवबाबा ब्रह्मा मुखवंशावली ब्राह्मण बच्चों ब्रह्माकुमार और ब्रह्माकुमारियों के द्वारा सारे यजमान रूपी मनुष्य मात्र को यह राखी बांधते हैं। इसमें परस्पर भाईचारे की या विश्व-बंधुत्व की सुदृढ़-सुंदर भावना समायी हुई होती है। मस्तक में आत्मा देखने व स्वयं को भी विशुद्ध आत्मा समझने का आत्मस्मृति रूपी टीका, तिलक देते हैं। यही आत्मभाव, देहभान व विकारी दृष्टि को बदल पावन प्रेम की सरिता बहाता है। बदले में खर्ची रूप में कोई पैसा, कौड़ी नहीं बल्कि मन के पांच खोटे सिक्कों (पांचों विकारों का) दान लेते हैं बस। यही रक्षाबंधन में उपयुक्त साधनों का महात्म्य है। राखी के दो धागे परस्पर एकता के सूत्र में बंधे रहने का इशारा करते हैं और कहते हैं लो यह मधुरता रूपी मिठाई खाओ सदा मुख से मधुर बोल बोलना, कड़ुवा नहीं।

कहते हैं कि यह राखी अर्थात् रक्षाबंधन कम-से-कम दशहरे तक बंधा रहे। इसका भाव तो यह हुआ जब तक दसों (पांच विकार नर के, पांच विकार नारी के या दसों इंद्रियों पर जीत पाना) को हर (हरण) न लें तब तक यह दृढ़ता की राखी अर्थात् मन में दृढ़ संकल्प बंधा ही रहना चाहिए। तो देख ली न इस मधुर त्योहार की विशिष्टता और अलौकिकता! कितना मार्मिक है यह प्यारा-बंधन, कितना तार्किक है यह त्योहार, कितनी विलक्षण है इसकी प्रतिभा। तो यों ही आंख बंद कर इस त्योहार को मना लेना और इसकी गरिमा को यूं ही अनदेखी करना, इस महान् त्योहार के प्रति अन्याय होगा, न्यायोचित नहीं होगा। तो आओ हम रक्षाबंधन के रहस्य को समझ इस त्योहार का यथार्थ आनंद लें। एकता, प्रेम व विश्व-बंधुत्व की भावना का मज़बूत बंधन बांधकर भारत मां सहित समस्त मातृ-जाति की रक्षा का संकल्प लें। ■

■बी.के. सतीश, माऊंट आबू

चिन्तन

अहिंसा

□ब्र.कु. ओमप्रकाश, बाँदा

लगभग २२५० वर्ष पूर्व आत्मशक्ति द्वारा बौद्ध धर्म की स्थापना करने वाले महात्मा गौतम बुद्ध को तो सभी अच्छी तरह जानते हैं । गया में बोधि वृक्ष तले तपस्या करने व बुद्धत्व प्राप्त करने के बाद महात्मा बुद्ध लोगों को धार्मिक शिक्षाएं देने हेतु गांव-गांव घूमते थे । उनकी अमृतवाणी (जिनका कालांतर में ''धम्पद'' के नाम से संकलन हुआ) सुन बहुत लोग उनके शिष्य बनते जाते थे । उनके जीवन की उन्हीं दिनों की एक घटना इस प्रकार है—

वे एक स्थान से किसी गांव को जाना चाहते थे । जिस गांव जाना चाहते थे उस गांव का एक सहज़ रास्ता बियावान जंगल से होकर जाता था किंतु उस रास्ते में ''अंगुलिमाल'' नाम का एक बहुत ही खूंखार, निर्दयी एवं क्रूर डाकू रहता था । उस इलाके से जो भी व्यक्ति निकलता वह उसे लूट लेता, साथ ही उसके हाथों की अंगुलियां काट लेता और फिर उन्हीं अंगुलियों की माला बना व पहनकर स्वच्छंद घूमता था । ऐसे खतरनाक डाकू से सभी डरते थे और दूसरे लम्बे मार्ग को पारकर दूसरे गांवों की यात्रा करते थे ।

जब बुद्ध उसी रास्ते से जाने लगे तो लोगों ने उन्हें खतरे से आगाह करते हुए बहुत समझाया कि वे उस रास्ते से न जाएं । महात्मा बुद्ध उसी रास्ते से अकेले चल दिये । जब वे घनघोर जंगल से गुज़र रहे थे, किसी व्यक्ति ने भारी रूआबदार आवाज़ में आदेश दिया, ''रुक जाओ, एक कदम भी आगे बढ़ाया तो जान से हाथ धोना पड़ेगा।'' किंतु बुद्ध अपनी मस्तचाल से चलते रहे । उस व्यक्ति ने इनकी तरफ भयानक आवाज़ करते हुए इन्हें पकड़ने हेतु दौड़ लगायी । जब वह पास आ गया तो उसने फिर रुकने को कहा, उसकी आंखें गुस्से-से लाल थीं, उसके हाथ में खून भरी बॉक (एक प्रकार का धारदार हथियार) थी । बुद्ध रुक गये उसने बुद्ध से पूछा जानते हो मैं कौन हूं ? बुद्ध ने कहा, ''हां लोगों ने बताया कि तुम अंगुलिमाल'' हो उसने पूछा—''क्या तुम्हें मुझे देख डर नहीं लग रहा ? तुम अन्य लोगों की तरह मुझे देखकर बचाव हेतु भाग भी नहीं रहे।'' बुद्ध ने कहा, ''नहीं, बिल्कुल नहीं।'' उसने पुनः पूछा, ''तुम्हें लोगों ने नहीं बताया कि मैं लोगों की अंगुलियां काट लेता हूं, और माला बनाकर पहनता हूं, उसने डरावनी शक्ल बनाकर कहा, देखो—यह माला!'' बुद्ध ने इसके उत्तर में निर्भयतापूर्वक दोनों हाथ उसके सामने बढ़ा दिये । यह दृश्य जीवन में पहली बार देखकर 'अंगुलिमाल' अवाक रह गया । उसको जीवन में पहली बार ऐसा कोई व्यक्ति मिला था, जो इतना निर्भय, अचल-अडोल, स्थिति में था, चेहरे पर एकदम शांत भाव, हृदय में ऐसे क्रूर हिंसा पर उतारू व्यक्ति के प्रति भी करुणा एवं दया का भाव । फिर भी उसने बुद्ध के दोनों हाथ, एक हाथ से पकड़े और दूसरे हाथ से बॉक पूरी शक्ति और वेग से उठाकर हाथ काटने को बढ़ायी और बुद्ध की आंखों में आंखें डाल देखता रहा, और जब हथियार वाला हाथ जैसे ही नीचे आया, उस पर उनकी अहिंसा का ऐसा असर पड़ा कि उसने हथियार ही नहीं फैंक दिया वरन् उनके चरणों पर गिर पड़ा और गिड़गिड़ाकर प्रार्थना करने लगा, ''बताइए आप कौन हैं ? इतने शांत, इतने निर्भय।''

महात्मा बुद्ध को जैसे इसी क्षण का इंतज़ार था, उन्होंने उसे उपदेश दिया, मैं और तुम देह नहीं हैं, किंतु इन देहों को चलाने वाली आत्माएं हैं, जो नित्य हैं अज़र-अमर अविनाशी हैं । उन्होंने आगे समझाया । हमें तुम्हें कभी मरना ही नहीं । हां, एक शरीर छोड़ना है और दूसरा प्राप्त करना है—यह तो सृष्टि का खेल है। इससे ही मैं भयमुक्त हूं।

आज के इस युग में तो इस श्रेष्ठ ज्ञान की और भी अधिक आवश्यकता है, कारण चहूं ओर चाहे वह पंजाब हो या मेरठ, श्रीलंका हो या ईरान-ईराक । हिंसा और आतंकवाद का नंगा नाच जारी है । नित्य प्रति सैंकड़ों, हज़ारों के मारे जाने की खबरों से अखबार रंगे पड़े रहते हैं । राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय, राजनीतिक व धार्मिक नेता तथा समाजसेवी व्यक्ति इस समस्या के अंत हेतु नई-नई तरकीबें नित्य निकालते हैं । पर सब व्यर्थ । कारण सभी एक छोटी हिंसा को दबाने के लिए दूसरी बड़ी हिंसा का ही सहारा लेने की बातें कहते हैं । वास्तव में वे इस समय परमात्मा शिव द्वारा दी गई शिक्षाओं के प्रति अनभिज्ञ हैं और इसलिए यह भूल जाते हैं कि आत्माएं अज़र-अमर, अविनाशी हैं और वह कभी मरती नहीं । दूसरे वह यह भी भूल जाते हैं कि मनुष्य आत्माएं पुनर्जन्म ले पुनः मनुष्य बनती हैं और इस प्रकार हिंसा द्वारा की गई हत्याओं से तो खेल बिगड़ता ही है। ऐसे हिंसा से शरीर छोड़ने वाली आत्माएं तो पुनर्जन्म ले हिंसा करने वालों से बदला लेने का ही काम करेंगी । प्रश्न उठता है कि ऐसी स्थिति को रोकें कैसे ? इसका सरल-सा उत्तर है—परमात्मा शिव यानी अल्लाह यानी सुप्रीम गॉडफादर द्वारा ब्रह्मातन के माध्यम से स्थापित 'प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्वविद्यालय' और उस द्वारा प्रदत्त ईश्वरीय-ज्ञान एवं राजयोग की शिक्षाएं जो पूर्ण अहिंसा का पाठ पढ़ा रहा है। □

भगवान कौन और मानव-जीवन का लक्ष्य क्या है ?

ले. ब्रह्माकुमारी सुधा, शक्ति नगर, दिल्ली

भारत के शास्त्रवादी लोग प्राय: संस्कृत में कहा करते हैं—"अन्ये तु कलाऽवतारौ, कृष्णस्तु भगवान स्वयं" इसका अर्थ यह है कि अन्य तो कला अवतार हैं परन्तु कृष्ण तो स्वयं भगवान हैं क्योंकि प्रचलित मान्यता के अनुसार श्री राम १४ कला सम्पन्न थे और श्री कृष्ण १६ कला सम्पन्न। अत: श्रद्धालु लोगों की यह मान्यता दृढ़ हो गई कि श्री कृष्ण सम्पूर्ण अवतार थे अथवा साक्षात् भगवान थे। उनकी इस मान्यता का क्या परिणाम हुआ ? इसकी चर्चा हम बाद में करेंगे। उससे पहले हम श्री कृष्ण से सम्बंधित दूसरी प्रचलित मान्यता की चर्चा करेंगे।

दूसरी प्रचलित मान्यता यह है कि ज्ञान की धारणा और योग तपस्या के द्वारा 'नर नारायण पद को प्राप्त करता है' । इस प्रसंग में यह मालूम रहे कि श्री कृष्ण को ही 'श्री नारायण' भी कहा गया है। श्री कृष्ण के अनेक नामों का गायन करते हुए भक्त लोग यह छन्द प्राय: गाया करते हैं—'श्री कृष्ण गोविन्द हरे मुरारे, हे नाथ **नारायण** वासुदेव' । अत: जबकि भक्तों की मान्यता के अनुसार श्री कृष्ण नारायण हैं और उनकी दूसरी मान्यता के अनुसार नर ज्ञान एवं योग द्वारा नारायण बन सकता है तो इन दोनों मान्यताओं का समन्वित अर्थ यह हुआ कि 'मनुष्य भगवान बन सकता है' क्योंकि तीसरी यह मान्यता तो प्रचलित है ही कि श्री कृष्ण (श्री नारायण) स्वयं भगवान हैं।

अब हम इन तीनों मान्यताओं के परिणाम के विषय में चर्चा करेंगे जैसे कि हम इस लेख के प्रथम अनुच्छेद में कह आये हैं।

सबसे पहली बात तो यह है कि श्री कृष्ण को साक्षात् भगवान मानने के परिणामस्वरूप लोग यह मानने लगे कि परमात्मा भी शिशु रूप धारण कर देह की विभिन्न अवस्थाओं—बाल्य, तरुण, युवा आदि अवस्थाओं का तथा कुल एवं जाति का भागी बनता है। इस दृष्टि से लोग एक ज्योति स्वरूप, अजन्मा एवं पारलौकिक सत्ता से योग युक्त होने की बजाय एक जाति-कुल-वर्ण-आयु से परिसीमित अर्थात् दैहिक परिचय वाले व्यक्ति विशेष को भगवान मानकर उसकी भक्ति, पूजा, महिमा, कीर्ति इत्यादि करने लगे जिससे कि उन्हें देहातीत एवं कर्मातीत स्थिति का लाभ नहीं हो सका।

दूसरे, यह मानकर कि नर नारायण बन सकता है और कि नारायण अथवा श्री कृष्ण स्वयं भगवान थे, वे ज्योतिस्वरूप जरा-मरण रहित, अकालमूर्त परमात्मा को भुला बैठे और आत्मा ही को परमात्मा मानने की भूल कर बैठे। परमात्मा को अनादि अविनाशी पिता मानने की बजाय आत्मा ही को परमात्मा मानने से वे परमात्मा से शक्ति प्राप्त करने अथवा ईश्वरीय जन्मसिद्ध अधिकार प्राप्त करने से वंचित हो गए। परमात्मा को सपत्नीक मानने और लौकिक सन्तति एवं कुल परिवार वाला एक गृहस्थी व्यक्ति मानने से वे सारे जगत के माता-पिता, सर्वशक्तिमान, लौकिक कर्म और उसके फल से मुक्त परमात्मा से अपने सम्बंध का विच्छेद कर बैठे।

तीसरे, भगवान को एक विशेष भू-खण्ड, विशेष संस्कृति आदि का कलेवर देने से वे एक सार्वभौम एवं शाश्वत एवं नित्य-निरंतर एवं शुद्ध-बुद्ध परमात्मा से पराङ्मुख होकर भगवान को एक देव-तुल्य उच्चतम मनुष्य के स्तर पर ले आये जिससे कि मनुष्य, देवता और भगवान के अन्तर को भूलकर लोग अपनी बुद्धि को सूक्ष्मातिसूक्ष्म महानतम, श्रेष्ठतम्, सर्वोत्तम परमात्मा से हटाकर मानवी स्तर पर ले आये जिसका एक परिणाम यह हुआ कि पृथ्वी के भिन्न-भिन्न भागों पर बसे हुए लोगों ने अपने-अपने देश के श्रेष्ठ-कर्मी मनुष्यों को अपना इष्ट, भगवान, अपना आराध्य, अपना उपास्य आदि मानना शुरू कर दिया जिसका परिणाम यह हुआ कि एक परमात्मा को मानने से मानव जाति की जो अखण्डता बनी रहती, वह नष्ट हो गई और अलग-अलग भगवान मानने से अलग-अलग धर्म स्थापित हो गए। और, उन अलग-अलग धर्मों के आधार पर मतभेद, वैमनस्य, झगड़े-फसाद, दंगे आदि होने लगे जो आज तक भी होते रहते हैं। उसी का एक परिणाम यह है कि आज संसार में हाहाकार मचा हुआ है।

अत: यदि इन बातों को समझते हुए हम इस सत्यता में निष्ठ हों कि भगवान एक है, ज्योतिस्वरूप है, जन्म-मरण, जाति-कुल से अतीत है, सारे विश्व के मानवीय आत्माओं का माता-पिता है, स्त्रीलिङ्ग अथवा पुलिङ्ग न होकर ज्योर्तिलिङ् है और कि श्री कृष्ण उस एक परमात्मा ही से योग युक्त होने के फलस्वरूप मनुष्य को प्राप्त होने वाला नारायण पद अथवा देवपद है तो हम उस सर्वशक्तिमान परमात्मा से योग युक्त

शेष पृष्ठ १४ पर

मैं कौन हूं? क्या शरीर से भिन्न आत्मा नाम की कोई चीज है?

—ले. ब्रह्माकुमारी हृदय मोहिनी, देहली

अपने सारे दिन की बातचीत में मनुष्य प्रतिदिन न जाने कितनी बार **'मैं'** शब्द का प्रयोग करता होगा। परन्तु यह एक आश्चर्य की बात है कि प्रतिदिन **'मैं'** और **'मेरा'** शब्द का अनेकानेक बार प्रयोग करने पर भी मनुष्य यथार्थ रूप में यह नहीं जानता कि **'मैं'** कहने वाली सत्ता का स्वरूप क्या है? अर्थात् 'मैं' शब्द जिस वस्तु का वाचक है वह वस्तु क्या है? यह कैसी विडम्बना है कि आज मनुष्य ने साइंस द्वारा बड़ी-बड़ी शक्तिशाली चीजें तो बना डाली हैं, उसने संसार की अनेक पहेलियों का उत्तर भी जान लिया है और वह अन्य अनेक जटिल समस्याओं का हल ढूँढ़ निकालने में भी खूब लगा हुआ है परन्तु यह "मैं, मैं" कहने वाला कौन है, इसके बारे में यह सत्यता को नहीं जानता अर्थात्, वह स्वयं को नहीं पहचानता! आज आप किसी भी मनुष्य से यह प्रश्न पूछिये कि – "आप कौन हैं? अथवा, आपका क्या परिचय है? "तो वह झट अपने शरीर का नाम बता देगा अथवा शरीर-निर्वाह के लिए उसने दुकानदारी, व्यापार आदि जो साधन अपना रखा है अथवा दिन-भर जो धन्धा वह करता है, वह उसका नाम बता देगा। उदाहरण के तौर पर कोई मनुष्य कहेगा–"मेरा नाम मौलीचन्द है।" तो प्रश्न उठता है कि 'मौलीचन्द' तो शरीर का नाम है, तब क्या 'मैं' कहने वाली सत्ता शरीर ही है?

क्या शरीर ही सब-कुछ है?

आप इस बात को जानते होंगे कि आज संसार में करोड़ों मनुष्य ऐसे हैं जो कहते हैं कि यह शरीर ही सब कुछ है, इससे भिन्न आत्मा नाम की कोई चीज़ नहीं है। वे कहते हैं कि – "जब तक मनुष्य का शरीर है और जब तक उसमें श्वास-प्रश्वास क्रिया, मस्तिष्क का व्यापार, रक्त का संचार, हृदय की गति आदि-आदि ठीक-ठीक कार्य कर रहे हैं तब तक ही मनुष्य का जीवन है और इसके सिवा कोई चेतन शक्ति या कोई अनादि-अविनाशी वस्तु नहीं है।" वे कहते हैं कि – "शरीर से भिन्न किसी चेतन वस्तु के अस्तित्व का कोई प्रमाण ही नहीं है।" इस प्रकार, वे स्वयं को देह मान कर, देह-अभिमानी बने हुए हैं और उसके परिणामस्वरूप दुःख भोग रहे हैं।

अतः अब हम विवेक और अनुभव के आधार पर यह सत्यता स्पष्ट करेंगे कि वास्तव में देह से भिन्न एक चेतन सत्ता भी है। वह एक नित्य वस्तु है और 'मैं' अथवा 'आत्मा' शब्द उसी वस्तु का वाचक है और इसलिए स्वयं को शरीर मानना एक ऐसी भूल करना है जिस ही के परिणामस्वरूप मनुष्य को अनेक प्रकार के दुःख होते हैं।

सुख, दुःख आदि का अनुभव आत्मा ही को होता है

जब मनुष्य आँखों द्वारा देखता है, कानों द्वारा सुनता है, मुख द्वारा खाता है या अन्य किसी इन्द्रिय द्वारा अन्य कोई कर्म करता है तो इन कर्मों के साथ-साथ उसे कुछ अनुभव अवश्य हुआ करता है। उदाहरण के तौर पर, मान लीजिये कि कोई निर्धन व्यक्ति किसी मनुष्य के पास जाकर कहता है कि – "मेरी माता जी बहुत सख्त बीमार हैं। उनकी चिकित्सा के लिए मेरे पास धन नहीं है। आप मेरी कुछ सहायता कीजिये।" अब कान तो इन शब्दों को केवल सुनने ही का साधन हैं परन्तु कानों द्वारा इन शब्दों को सुनकर दया, करुणा, सहानुभूति आदि का जो अनुभव होता है वह कानों को नहीं होता बल्कि एक चेतन सत्ता को होता है। जिसे **'आत्मा'** कहते हैं।

इसी प्रकार, मान लीजिये कि कोई व्यक्ति, एक मनुष्य के पास स्नेह-पूर्वक एक पुष्प ले जाकर उसे भेंट करता है। अब आँखें तो केवल देखने का साधन मात्र हैं, वे अन्य दृश्यों की तरह इस दृश्य को भी प्रस्तुत करती हैं परन्तु दूसरे मनुष्य के स्नेह को जानने और फूल की सुन्दरता को देखकर हर्षित होने का जो अनुभव होता है, वह आँखों से भिन्न एक चेतन सत्ता को होता है। वह चेतन सत्ता ही आत्मा है। अगर हर्ष का अनुभव आँखों या कानों को होता तो विषय के हट जाने पर वह हर्ष समाप्त हो जाता परन्तु हम देखते हैं कि बहुत बार फूल को हटा लेने के बाद भी हम उस मनुष्य के स्नेह का तथा फूल की सुन्दरता और सुगन्धि का विचार करके हर्ष का अनुभव करते हैं। इसी प्रकार, हमारे सामने जब कोई व्यक्ति

आता है तो न केवल हम उसे देखते हैं बल्कि उसे देखते ही हम विचार करते हैं कि हम उससे परिचित हैं या अपरिचित हैं अथवा यह हमारा मित्र है या शत्रु है और विचार के साथ-साथ हमें उसके प्रति हर्ष या दुःख का, लगाव या अलगाव का अनुभव भी होता है । विचार करना और सुख-दुःख का अनुभव करना आँख का कर्म नहीं है बल्कि उससे भिन्न एक विचारशील और अनुभवशील अर्थात् चेतन सत्ता का स्वभाव है जिसे 'आत्मा' कहा जाता है।

सुख-दुःख, आश्चर्य, उत्सुकता, दया आदि को अनुभव करने का गुण प्रकृति का गुण नहीं है। हम संसार में प्रकृति के किसी भी पदार्थ को विचार करते हुए अथवा हर्ष या शोक करते हुए नहीं देखते। अतः मानना पड़ेगा कि चेतनता हमारे प्रकृतिकृत शरीर का गुण नहीं है बल्कि इससे भिन्न किसी अन्य पदार्थ का गुण है।

इन्द्रियों के अनुभवों को इकट्ठा करने और याद रखने वाली आत्मा इन्द्रियों से अलग है

सभी जानते हैं कि आँखें केवल देखने ही का उपकरण हैं, उन द्वारा हम सुन नहीं सकते। इसी प्रकार, कान केवल सुनने ही का उपकरण हैं, उन द्वारा हम देख नहीं सकते। अतः विचार कीजिये कि जब हम किसी मनुष्य को अपने सामने खड़ा देखते हैं और उसके वचन सुनते हैं और हमारे मुख से ये शब्द निकलते हैं कि – 'इस मनुष्य को तो हमने **पहले भी देखा** है और इसके वचन तो हमने **पहले भी सुने** हुए हैं तो यह बात कौन कहता है? **पूर्व काल की स्मृति** का गुण आँख या कान का गुण तो है नहीं और दूसरी बात यह भी है कि आँख को तो यह मालूम नहीं है कि कान से क्या सुना है और कान को भी यह मालूम नहीं है कि आँख ने क्या देखा है। तो स्पष्ट है कि आँखों और कानों से भिन्न तथा अलग एक चेतन सत्ता है जो इन दोनों द्वारा किए गए अनुभवों को जोड़ती है और पूर्व काल में हुए अनुभवों को याद रखती है और वर्त्तमान काल में हुए अनुभवों से उनका मिलान करके मुख रूपी तीसरी इन्द्रिय द्वारा कहती है कि – "इस मनुष्य को मैंने पहले भी देखा है।" उसी का नाम 'आत्मा' है। उस आत्मा में ही 'पहचान', 'स्मृति' आदि गुण हैं। वही इन्द्रियों द्वारा जानती, पहचानती और अनुभव करती है।

इच्छा और पुरुषार्थ, शरीर से भिन्न आत्मा ही के लक्षण हैं

हम देखते हैं कि मनुष्य इच्छा सदा उस वस्तु की करता है जिसे वह सुख देने वाली मानता है। इच्छा करने के बाद वह उसे प्राप्त करने के लिए विचार करता है अथवा योजना बनाता है और तब उसके लिए पुरुषार्थ करने लगता है। आखिर उसे प्राप्त करके वह सुख का अनुभव करता है और कहता है कि – "मेरी इच्छा पूर्ण हुई।" अब सोचने की बात है कि इच्छा और पुरुषार्थ करने वाला कौन है?

"मेरी इच्छा पूर्ण हुई," इन शब्दों से तो यह सिद्ध होता है कि जिसकी इच्छा पूर्ण हुई और जिसने इच्छा की थी, वह एक ही है। इससे स्पष्ट है कि यह अनुभव अथवा ये शब्द शरीर के नहीं हो सकते क्योंकि शरीर तो इच्छा के पूर्ण होने के समय वही नहीं होता जो कि इच्छा उत्पन्न होने के समय होता है बल्कि वह तो काल के कारण बाल्यावस्था से युवावस्था अथवा वृद्धादि अवस्था में बदल जाता है। इससे प्रमाणित है कि शरीर से भिन्न एक अन्य सत्ता है जो कि चेतन है, जो कि पदार्थों के बारे में **विचार करती है** कि वह सुखदायक हैं या दुःखदायक, फिर वह उनमें **चुनाव करती** है और सुखदायक वस्तु को प्राप्त करने के लिए **पुरुषार्थ करती** है और अन्त में उसके प्राप्त होने पर सुख का **अनुभव** करती है। शरीर तो अन्य पदार्थों की तरह स्वयं भी सुख-दुःख का **'साधन'** है, वह सुख-दुःख का **'भोक्ता'** नहीं है। शारीरिक सुख की इच्छा करने वाला तथा शरीर को भी स्वस्थ रख कर उस सुख को भोगने वाला तो शरीर से अलग ही है। शरीर अनुभव नहीं करता है बल्कि शरीर का भी अनुभव करने वाला शरीर से अलग एक चेतन है। उसी को 'आत्मा' कहते हैं।

चेतनता, अनुभव, स्मृति, इच्छा आदि गुण या लक्षण शरीर के आकस्मिक गुण भी नहीं हैं

ऊपर हमने चेतनता, सुख-दुःख के अनुभव की योग्यता, स्मृति, ज्ञान-पहचान, इच्छा और पुरुषार्थ आदि जिन गुणों या लक्षणों का उल्लेख किया है, यह गुण या लक्षण प्रकृति के किसी भी पदार्थ में हम नहीं देखते। अतः यह गुण शरीर के भी नहीं हो सकते क्योंकि शरीर भी प्रकृतिकृत ही है। यदि वे गुण शरीर के **स्वाभाविक**

गुण होते तो शरीर में वे सदा ही रहते क्योंकि **स्वाभाविक** गुण सदा ही अपने आधार में रहते ही हैं जैसे कि चीनी में मिठास रहता है। परन्तु हम देखते हैं कि मृत्यु आदि अवस्थाओं में शरीर में चेतनता, स्मृति इत्यादि गुण नहीं होते। इससे सिद्ध है कि ये गुण शरीर के **स्वाभाविक** गुण नहीं हैं।

कई लोग कहते हैं कि – "ये गुण शरीर या प्रकृति के **स्वाभाविक** गुण तो नहीं हैं परन्तु प्रकृति के तत्व जब एक विशेष रीति से मिलकर विशेष अवस्था में होते हैं तो **आकस्मिक** ही उनमें चेतनता का गुण आ जाता है।" वे कहते हैं कि – 'चेतना, विचार आदि किसी आत्मा-वात्मा के गुण नहीं हैं, बल्कि जब प्रकृति के तत्त्व मिलकर शरीर का रूप धारण करते हैं और शरीर की सभी क्रियाएँ ठीक चलती हैं तब उस अवस्था में शरीर रूपी प्रकृति मेंअनुभव की शक्ति, स्मृति की योग्यता इत्यादि लक्षण आ जाते हैं।" परन्तु वास्तव में यह कथन ग़लत है क्योंकि ये एक नियम है कि जो गुण कारण में न हो वह कार्य में भी नहीं हो सकता। जबकि हम प्रकृति के तत्वों में ही चेतनता नहीं देखते तो स्पष्ट है कि प्रकृति के कार्यों अर्थात पदार्थों में भी वह गुण नहीं हो सकते। अच्छा, मान लीजिये कि कोई गुण जो प्रकृति के तत्त्वों में न हो वह उनको मिला कर बनाई गई वस्तु में हो भी, तो भी उनको उस तरह बनाने वाला कोई 'चेतन निमित्त' चाहिये क्योंकि बिना किसी विचारवान चेतन के प्रकृति के तत्व भी एक विशेष प्रयोजन के लिए स्वतः ही मिलकर एक विशेष पदार्थ अथवा अवस्था नहीं बना सकते। दूसरी विशेष बात यह भी है कि प्रकृति के तत्व अथवा पदार्थ तो 'भोग्य' पदार्थ हैं, वे स्वयं 'भोक्ता' कैसे हो सकते हैं, वे तो अनुभव का विषय हैं, वह अनुभव करने वाले नहीं हैं। प्रकृति के पदार्थ तो "इच्छा की पूर्ति के लिए आवश्यक सामग्री" हैं, वे स्वयं "इच्छा करने वाले" नहीं हो सकते, वे विचार के विषय तो हैं परन्तु विचार करने वाले नहीं हैं। बल्कि जब हम विचार कर रहे होते हैं तो हमें अपनी सत्ता का देह से अलग अनुभव भी होता है। हमअपने शरीर के बारे में भी जब विचार करते हैं तो हमें ऐसा स्पष्ट अनुभव होता है कि हम विचार करने वाले हैं और शरीर हम से अलग है जिसके बारे में हम विचार कर रहे हैं।

इसके अतिरिक्त, हम देखते हैं कि जब कोई मनुष्य ध्यानावस्था में होता है अथवा दिव्य चक्षु द्वारा कुछ साक्षात्कार कर रहा होता है तो उसके कान ठीक होते हुए भी वह अपने पास में हो रही ध्वनि को या शब्दों को नहीं सुनता, उसके हाथ भले ही किसी चीज़ को छू रहे हों, परन्तु उस चीज का भान उसे नहीं होता तथापि वह अपने दिव्य नेत्र से कुछ देख रहा होता है और विशेष प्रकार का आनन्द अनुभव कर रहा होता है जिसका वह बाद में वर्णन भी करता है। इससे स्पष्ट है कि अनुभव करने वाली, स्मृति वाली, विचार वाली चेतन सत्ता इस देह से अलग है।

और तो क्या, बहुत बार एक शरीर में किसी दूसरी आत्मा का भी प्रवेश या सन्निवेश हो जाता है और ऐसा बहुत बार अनुभव में भी आया है। इन सभी प्रमाणों से आत्मा की अलग सत्ता सिद्ध है।

आत्मा की सत्ता मस्तिष्क से अलग है

ऊपर हमने कुछेक युक्तियाँ देकर आत्मा के अस्तित्व की सत्यता को जतलाने की कोशिश की है परन्तु आज कुछ लोग ऐसे भी हैं जो कहते हैं कि विचार, स्मृति, अनुभव इत्यादि मस्तिष्क (Brain) ही के कार्य (function) हैं। वे कहते हैं कि – "शरीर में स्नायुओं का जो जाल बिछा हुआ है, उन द्वारा मस्तिष्क ही अनुभव करता है, विचारता तथा निर्णय करके कर्मेन्द्रियों द्वारा काम करता है। अथवा मस्तिष्क में बहुत सूक्ष्म रूप में मानो परमाणुओं के रूप में प्रकृति ही यह सोच-विचार करती है अथवा किसी विशेष प्रकार की विद्युत शक्ति, किसी इलेक्ट्रॉनिक सिस्टम की तरह काम करती है।" परन्तु इस मत पर विचार करने पर आप मानेंगे कि यह ग़लत है क्योंकि एक तो हम देखते हैं कि प्रकृति की जितनी भी चीज़ें हैं, चाहे वे इलेक्ट्रॉनिक सिस्टम की तरह काम क्यों न करती हों, वे किसी चैतन्य के प्रयोग के लिए होती हैं, वे स्वयं अपने लिए नहीं होतीं; दूसरी बात यह है कि उनमें सोचने की योग्यता नहीं होती, वे अपने भविष्य के बारे में चिन्तन करने अथवा भूत (Past) के बारे में सोचने में समर्थ नहीं होतीं और विशेष बात यह है कि उनमें किसी बात को विशेष दृष्टिकोण से देखने, उसका विशेष भाव निकालने और उसे विशेष प्रकार से महसूस करने की योग्यता नहीं होती। उदाहरण के तौर पर प्रकृति की बनी हुई कोई चीज़ ऐसी तो हो सकती है जो शब्दों को रिकार्ड कर ले परन्तु वह एक ही शब्द का भिन्न-भिन्न

(शेष पृष्ठ ३२ पर)

"कर्मयोग से विश्व-परिवर्तन"

□ब्र.कु. उर्मिला, चण्डीगढ़

कल्पान्त के इस नाजुक समय में सृष्टि के मालिक ने हम सभी ब्रह्मा मुखवंशावली ब्राह्मणों पर बहुत बड़ी ज़िम्मेवारी रखी है । अस्त-व्यस्त हुए विश्व को व्यवस्था प्रदान करने की ? चेतन-अचेतन सभी की विकृतियों को दूर कर सतोप्रधान बनाने की । हम जानते हैं विश्व-परिवर्तन का आधार व्यक्ति परिवर्तन है । व्यक्ति में दो चीज़ें हैं—शरीर और आत्मा । आत्मा चेतन है और शरीर जड़ है । अत: अपनी इन दोनों शक्तियों को कार्य में लगाकर ही हमने स्वपरिवर्तन और विश्व-परिवर्तन के कार्य को पूरा करना है। इस प्रयोजन हेतु परमात्मा पिता ने भी हमें अति उपयुक्त विधि कर्मयोग ही बतलाई है। कर्मयोग माना आत्मा, परमात्मा पिता को याद करती रहे, शुभ संकल्पों का प्रवाह फैलाती रहे और पांच तत्वों का बना यह शरीर ईश्वरीय सेवा में व्यस्त रहे । जहां सर्वशक्तिवान के साथ योग और शुभ संकल्प अन्य आत्माओं को पावन बनाएंगे वहां तत्वों से बना शरीर अपनी सेवा से तत्वों को पावन बनाएगा ।

विश्व-परिवर्तन के लिए आजतक जितने भी प्रयास किए गए वे एकतरफा रहे । यदि कर्म को अपनाया गया तो योग न होने के कारण उस कर्म में पवित्रता, सत्यता, शक्ति और सकारात्मकता नहीं भर पायी और कर्म-संन्यासियों की एकाग्रता शरीरों को पावन न बना सकी और अगला जन्म उन्हें फिर गृहस्थियों के यहां लेना पड़ा । अत: एकतरफा प्रयास का फल एकतरफा और अल्पकाल का ही रहा । संसार में कुछ परिवर्तन आया, पूर्ण नहीं । कर्मयोग ही संसार को समृद्ध और खुशहाल बनाने का एकमात्र सही ढंग है।

कर्म में योग होने से आत्मा में शक्ति भरती जाती है। आत्मविश्वास बढ़ता जाता है। मैं दाता का बच्चा दाता हूं, मैं सभी-कुछ करने में समर्थ हूं, यह भाव आत्मा में आता जाता है। कहा जाता है प्यारी वस्तु का दान सबसे बड़ा दान है। दैहिक दुनिया, दैहिक सम्बंधों और देह इन तीनों में हमें देह से ही सबसे ज्यादा प्यार होता है। इसी से मोह निकालना मुश्किल प्रतीत होता है । वस्तु का दान कर दिया उसमें से मेरापन निकाल दिया और यह हमें आत्मिक संतोष से भर देता है।

हमें समझ आ गई है कि हम विश्व के मालिक थे और भविष्य में पुन: बनने जा रहे हैं, जिसके लिए नियंत्रण शक्ति, प्रशासन-कला अति अनिवार्य है । इसकी प्रैक्टिस भी अभी संगम पर करनी है जिसके लिए पिता परमात्मा के महावाक्य हैं—"आप रचयिता की पहली रचना यह देह है। इस देह रूपी रचना के रचयिता कहां तक बने हैं ? देह रूपी रचना कभी अपनी तरफ रचयिता को आकर्षित कर रचतापन विस्मृत तो नहीं कर देती ?" मालिक बन इस रचना को सेवा में लगाते रहते । जब चाहें जो चाहें मालिक बन, करा सकते हैं । पहले-पहले इस देह के मालिकपन का अभ्यास ही प्रकृति का मालिक वा विश्व का मालिक बना सकता है । अगर देह के मालिकपन में सम्पूर्ण सफलता नहीं तो विश्व के मालिकपने में भी सम्पन्न नहीं बन सकते हैं।

कर्मयोग कभी जीवन में हताश, निराश और हीन नहीं होने देगा । कर्म में व्यस्त रहकर शरीर को बाजा मानकर बजाने में, खिलौना मानकर इसके साथ खेलने में उतनी ही खुशी और आनंद आता है जितना खेलने में, और मौज मनाने में। कर्म में व्यस्त रहने से माया नहीं आती । विश्वसेवा और यज्ञसेवा बुद्धि को इधर-उधर भटकने से सुरक्षित रखती है। कर्मयोग से हमें डबल मार्क्स मिलते हैं क्योंकि इसमें हम दुगनी सेवा करते हैं । मन से भी और तन से भी, अत: विकर्म विनाश होते जायेंगे । अनेकों की दुवाएं मिलती हैं ।

संसार से अनासक्त और उपराम रहने का श्रेष्ठ साधन भी कर्मयोग है । कर्म में व्यस्त रहने से व्यर्थ वाचा, चिंतन से तो बच ही जाएंगे, साथ-साथ कर्म में योग होने से कर्म के प्रभाव से भी न्यारे हो जाएंगे और इस प्रकार यह त्याग का भी त्याग सिद्ध होगा । अंत में हमें ध्यान रहे यहां हम सेवा करने नहीं आए पवित्र और योगी बनने आए हैं । सेवा तो महज़ इस लक्ष्य की प्राप्ति का साधन है। अत: सेवा को सम्पूर्णता का मात्र साधन ही मानें। साध्य को भूलकर केवल सेवा को ही सब-कुछ मान लेने से बात एकतरफा रह जाती है। अत: सेवा के साथ लक्ष्य और लक्ष्य देने वाले पिता परमात्मा को न भूलें यही कर्मयोग है और सम्पूर्ण परिवर्तन का आधार है। □

योग का अर्थ क्या है और भारत का वास्तविक एवं प्राचीन योग कौनसा है?

ले. – ब्रह्माकुमारी अचल, चण्डीगढ़

आज इस विराट सृष्टि में अनेकानेक प्रकार के योग प्रचलित हैं। उन अनेक प्रकार के योगों की चर्चा सुनकर प्रायः लोगों के मन में प्रश्न उठता है कि इन सभी योगों में से वास्तविक योग कौनसा है? वे जानना चाहते हैं कि जिस योग द्वारा मनुष्य प्रभु से मिलन मनाता है और अखुट आनन्द प्राप्त करता है और जिस योग द्वारा उसकी अवस्था अव्यक्त और स्थिति एकरस होती है, भला वह योग कौनसा है? वे पूछते हैं कि जिस योग से विकर्म दग्ध होते हैं और मनुष्य भविष्य में मुक्ति और जीवन-मुक्ति (देव-पद) प्राप्त कर सकता है और वर्तमान काल में भी कमल पुष्प के समान जीवन व्यतीत कर सकता है तथा पवित्रता, दिव्यता और आत्मिक सुख की अथाह प्राप्ति कर सकता है उस योग की क्या पहचान है? इन सभी प्रश्नों का एक सही उत्तर प्राप्त करने के लिए पहले योग का सही अर्थ जानना जरूरी है।

'योग' शब्द का वास्तविक अर्थ

'योग' का अर्थ है 'जोड़ना' अथवा 'मिलाप'। आध्यात्मिक चर्चा में 'योग' शब्द का भावार्थ आत्मा का परमात्मा से 'सम्बन्ध जोड़ना' अथवा 'परमात्मा से मिलन मनाना' है। अब यह तो प्रायः सभी प्रेमी लोग मानते हैं कि परमात्मा परमपिता है और 'त्वमेव माताश्च पिता त्वमेव' आदि शब्दों द्वारा इस पारलौकिक सम्बन्ध का गायन भी करते हैं। अतः प्रश्न उठता है कि जबकि आत्मा और परमात्मा के बीच पिता-पुत्र आदि का सम्बन्ध है ही तो फिर इस 'जोड़ने' का क्या अर्थ है?

इसका उत्तर यह है कि आत्मा और परमात्मा के बीच का सम्बंध आज केवल कथन मात्र ही है, वह प्रैक्टीकल (Practical) जीवन में बिल्कुल नहीं है। वरना परमात्मा के साथ आत्मा के मात -पिता, सखा-स्वामी आदि जिन सम्बंधों का गायन है, वे तो बहुत ही गहरे, उच्च और नज़दीकी सम्बन्ध हैं और उनका तो हमारे जीवन में बहुत गहरा अनुभव होना चाहिये। उनका तो हमारे ऊपर काफ़ी प्रभाव भी होना चाहिए तथा उन द्वारा हमें कोई उच्च प्राप्ति भी होनी चाहिए। परन्तु हम देखते हैं कि आज मनुष्य के जीवन पर उन सम्बन्धों का कोई प्रभाव नहीं है और उन द्वारा होने वाली प्राप्ति अर्थात् पूर्ण सुख-शांति भी नहीं है। इसलिए हम कहते हैं कि परमात्मा के साथ मनुष्यात्मा का पिता-पुत्र का सम्बन्ध तो है परन्तु आज वह जुटा हुआ नहीं है बल्कि आज मनुष्य जीवन में जो अपवित्रता, दुःख और अशान्ति है उससे तो यह सिद्ध होता है कि यह सम्बन्ध टूट चुका है अर्थात् वर्तमान जीवन योग-भ्रष्ट जीवन है। संसार में हम यह देखते हैं कि जहाँ पिता-पुत्र, स्वामी-सेवक, पति-पत्नि, सखा-सखा आदि जैसे घनिष्ठ संबंध जुटे होते हैं, वहाँ वे एक-दूसरे के प्रति प्रैक्टीकल रीति से इन संबंधों में बर्तते तथा व्यवहार करते हैं। उनका सम्बन्ध केवल कहने मात्र तक नहीं होता बल्कि उनका जीवन ही उन सम्बन्धों में ढला होता है और उन गहरे सम्बन्धों के अनुसार ही चलता है। हम सांसारिक सम्बन्धों में यह भी स्पष्ट रूप से देखते हैं कि यदि वह सम्बन्ध केवल कहने मात्र तक रह गये हों और उन सम्बन्धों वाले व्यक्ति परस्पर उस स्नेह और नाते से बर्तते न हों तो उन सम्बन्धों में भी कोई रस नहीं आता, कोई अनुभव नहीं होता और उसका कोई फल अथवा लाभ भी नहीं होता। अतः स्पष्ट है कि यद्यपि परमात्मा और आत्मा का पिता-पुत्र आदि-आदि जैसा बहुत ही निकट और उच्च सम्बन्ध है तथापि वह सम्बन्ध आज प्रैक्टीकल जीवन में अर्थात् व्यवहार में नहीं है, इसलिए ही आज आत्मा को आनन्द और सुख की प्राप्ति नहीं है। बल्कि वह सम्बन्ध आज वैसा ही कहने मात्र तक रह गया है जैसा कि उस पुत्र का सम्बन्ध रह जाता है जो कि अपने पिता से अलग होकर दूसरे देश में चला जाता है और वहाँ वह न अपने पिता को कभी याद करता है, न उससे वह पत्र-व्यवहार करता है, न उसकी दी हुई आज्ञाओं के अनुकूल चलता है, और न उसके कुल की मान-मर्यादा के अनुसार बर्तता है

परन्तु जब वलदियत (पिता का नामादि) बताने का कोई अवसर आता है तो वो केवल तभी अपने माता-पिता के नाम का उच्चारण अथवा उल्लेख मात्र कर देता है।

अतः 'योग' का अर्थ स्पष्ट जानने के लिए पहले यह जानना जरूरी है कि 'परमात्मा के साथ सम्बन्ध जोड़ने' का क्या अर्थ है और उसके लिए हमें क्या करना है? इस रहस्य को समझने के लिए हम लौकिक सम्बन्धों का सर्वेक्षण करके देखते हैं कि प्रैक्टीकल जीवन में सम्बन्ध जुटे होने का क्या भाव होता है?

परमात्मा से सम्बन्ध जुटाने के लिए उसके परिचय में निश्चय और स्मृति होना ज़रूरी

जब हम साँसारिक सम्बन्धों पर विचार करते हैं तो पता चलता है कि सम्बन्ध जुटाने का पहला साधन है परिचय, पहचान अथवा ज्ञान। जब कोई बच्चा पैदा होता है तो किसी मनुष्य के साथ उसका पिता-पुत्र का सम्बन्ध तो जन्म-काल ही से हो जाता है परन्तु उस सम्बन्ध को जुटाने के लिए बच्चे को यह पहचान दी जाती है कि अमुक व्यक्ति उसका पिता है और अमुक नारी उसकी माता है। **यह ज्ञान अथवा पहचान प्राप्त किये बिना बच्चे का अपने माता-पिता के साथ सम्बन्ध जुट ही नहीं सकता।**

बचपन में तो केवल माता-पिता के नाम-रूप ही का परिचय मिलता है। उसमें निश्चय करने से ही उस बालक का सम्बन्ध अपने माता-पिता से जुटता है। परन्तु वह बच्चा इस सम्बन्ध को बहुत स्पष्ट रूप से अथवा गहराई से नहीं जानता न ही यह सम्बन्ध उसके जीवन और व्यवहार में अभी गहरा उतरा ही होता है तो भी वह बच्चा जब-कभी अपने पिता के सन्मुख जाता है अथवा जब भी उसे अपने पिता की स्मृति आती है तो वह स्वयं को पुत्र अनुभव करता है। फिर जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होता है, उसे अपने पिता के नाम और रूप के अतिरिक्त यह भी ज्ञान होता जाता है कि उसके पिता कौनसा धन्धा करते हैं और किस देश अथवा नगर के निवासी हैं। समयान्तर में उसे यह भी परिचय मिल ही जाता है कि उसके पिता की क्या पूँजी, सम्पत्ति अथवा आर्थिक और सामाजिक स्थिति है, उसमें क्या गुण हैं, उसका कौनसा कुल या धर्म है, आदि आदि। **अतः उस समस्त परिचय और निश्चय के आधार पर, उसकी बुद्धि में उसके पिता की स्मृति (Consciousness) रहती है, जभी तो वह यह कोशिश करता है कि उतना ही खर्च करे जितना कि पिता की आर्थिक स्थिति से सम्भव है, वह वैसे कर्म करे जैसे कि उसके कुल और धर्म के अनुकूल हों, वह ऐसे रीति-रिवाज अपनाये जो उसके देश और वंश आदि के अनुसार हों। इस प्रकार उसके पिता का विस्तृत परिचय, उसकी स्मृति को तथा उसके जीवन के समस्त कर्मों और व्यवहार को मर्यादित करता है, उसे एक विशेष दिशा में मोड़ता है।**

पुनश्च, वह जब-कभी अपने पिता के सन्मुख जाता है अथवा जब भी उसे अपने पिता की स्मृति आती है तो वह स्वयं को उसका पुत्र **अनुभव** करता है। अतः जैसे सांसारिक दृष्टिकोण से पिता-पुत्रादि का सम्बन्ध जुटने का पहला साधन परिचय (ज्ञान) में **निश्चय** और निश्चय के आधार पर **स्मृति** (Consciousness) है, ठीक उसी प्रकार योग के लिए अथवा परमपिता परमात्मा से सम्बन्ध जुटाने के लिए यह आवश्यक है कि सबसे पहले तो मनुष्य को परमात्मा के नाम, रूप, धाम, गुण, दैवी सम्पत्ति आदि का यथार्थ परिचय हो, तब वह उसमें **निश्चय** करे और उसके आधार पर वह परमात्मा की स्मृति में रहे।

परमात्मा से सम्बन्ध जुटाने का भाव है उसकी लग्न में मग्न होना

पिता-पुत्र, पति-पत्नि, सखा-सखा, प्रेमी-प्रेमिका आदि के सम्बन्ध में हम देखते हैं कि उनका जितना घनिष्ठ और निकट का नाता होता है उतना ही उनका एक-दूसरे के प्रति अगाध प्यार और स्नेह होता है। एक-दूसरे की याद उनके मन में ऐसी तो बस जाती है कि भुलाये नहीं भूलती। वे एक-दूसरे की लग्न में लगे रहते हैं। कोई व्यक्ति दफ्तर में काम करता है तो भी उसके मन में यह भान समाया रहता है कि "मैं बाल-बच्चों वाला मनुष्य हूं, उन बच्चों के लिए तथा पत्नि के लिए मुझे यह धन्धा करके कुछ-न-कुछ तो कमाना ही है।" शाम को वह घर लौटता है तब भी यही सोचता है कि "बच्चों के लिए अथवा पत्नि के लिए अमुक-अमुक वस्तु मुझे ले जानी है।" इसी प्रकार, कोई प्रेमी व्यक्ति सोचता है कि मैं दफ्तर से छुट्टी पाऊँ तो मैं जाकर प्रेमिका से

मिलूँ। स्कूल में पढ़ने वाले बच्चे सोचते हैं कि छुट्टी हो तो हम अपने माता - पिता, भाई-बहनों अथवा सखा-सखियों से मिलें । इसी प्रकार जिसका जिस-किसी से निकट का तथा घनिष्टता का नाता होता है, उसकी ओर ही उसका मन लगा रहता है अथवा तन्मय हुआ रहता है। वास्तव में एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति के साथ सम्बन्ध जुटे होने का मुख्य चिन्ह ही एक की मन-बुद्धि का दूसरे के प्रेम में विभोर होना, स्नेह में स्थित होना और लग्न में मग्न होना है। ठीक इसी प्रकार परमपिता परमात्मा से सम्बन्ध जुटाने अथवा उनसे योग-युक्त होने का अर्थ भी मन को उनकी लग्न में मग्न करना अथवा बुद्धि को उनकी स्मृति में स्थित करना है। मनुष्य किसी की लग्न में जितना मग्न होता है उतना ही उसे और सब कुछ फीका लगता है और अन्य सब तरफ से उसका मन उपराम होता है। अतः बुद्धि द्वारा परमपिता परमात्मा की स्मृति का रसपान करने में लगी हुई आत्मा ही वास्तव में योग-युक्त है, उस ही का सम्बन्ध मानो परमात्मा से जुटा हुआ है।

परमात्मा से सम्बन्ध जुटने अथवा योग-युक्त होने का अर्थ है परमात्मा के प्रति अर्पणमयता

हम संसार में यह भी देखते हैं कि पिता-पुत्र पति-पत्नी, प्रेमी-प्रेमिका आदि के सम्बन्ध में एक दूसरे के प्रति इतना तो अर्पणमय होता है कि वह सारा दिन-भर उनके लिए धन्धा करता है, उनके दुःख-सुख के लिए रात-भर जाग भी लेता है, अपना समय, धन और शक्ति भी लगाता है मानो वह उन्हीं का होकर रहता है। उसके व्यवहार से ऐसा लगता है कि उसका सारा जीवन ही शायद पत्नि और बच्चों आदि के लिए है। इसी तरह, एक पत्नि सारा दिन अपने पति के लिए तथा बच्चों के लिए कार्यव्यवहार, देख-भाल तथा प्रबन्ध व्यवस्था करने में लगी रहती है। बच्चे भी अपने माता-पिता ही की शरण में होकर रहते हैं और उन्हीं की छत्र-छाया में पलते तथा चलते हैं। इसी प्रकार परमात्मा से सम्बन्ध जुटाने का भी भाव परमात्मा के **अर्पणमय** होकर रहना है। सभी कर्म करते समय भी स्वयं को परमात्मा ही के कार्य में **निमित्त मानना** और अपने तन-मन-धन को परमपिता परमात्मा का ही मानने से मनुष्य की ममता और आसक्ति मिटती है और वह उन्हें किसी मायावी कार्य में नहीं लगाता बल्कि वह घर-गृहस्थ में बर्तते हुए भी कमल-पुष्प के समान न्यारा और प्यारा होकर रहता है। यही वह योग है जिससे कि मनुष्य को विदेही अथवा अव्यक्त अवस्था प्राप्त होती है और उसकी सब चिन्ताएँ मिट जाती हैं और चित्त गद्‌गद् हो जाता है।

सम्बन्ध जुटाने का भाव मन, वचन तथा कर्म को उस सम्बन्ध के अनुकूल बनाना है

सांसारिक सम्बन्धों में हम स्पष्ट देखते हैं कि जब किसी का पिता-पुत्र, पति-पत्नि आदि का नाता जुटा होता है तो उसका वैसा ही अनुभव और वैसा ही मानसिक, आत्मिक तथा शारीरिक व्यवहार होता है। उदाहरण के तौर पर जब कोई व्यक्ति अपने पिता के सामने जाता है तो उसके मन में न केवल यह पहचान ही होती है कि यह व्यक्ति मेरा पिता है बल्कि वह बालकपन के उस सम्बन्ध के अनुभव में स्थित भी होता है और मन्सा, वाचा,कर्मणा वह उसी अनुभव के आधार पर ही बर्तता है। वह पिता के प्रति वैसे ही शब्द प्रयोग करता है जो कि उसके योग्य हों, वह पिता को वैसे ही स्नेह तथा आदर से अभिवादन करता है जैसा कि एक पुत्र का पिता के प्रति होना चाहिए। पुनश्च, अपनी सारी दिनचर्या में भी उसका मानसिक, वाचिक और शारीरिक कर्म अपने पिता ही के धर्म, कुल,सामाजिक और आर्थिक स्थिति के अनुसार ही होता है। ठीक इसी प्रकार परमपिता परमात्मा के साथ सम्बन्ध जुटे होने का अर्थ यह है कि मनुष्य के मन, वचन और कर्म पर ज्ञान के सागर, शान्ति के सागर, आनन्द के सागर, प्रेम के सागर, पतित-पावन, कल्याणकारी परमपिता परमात्मा के परिचय का प्रभाव हो अर्थात् उसके मन, वाणी तथा कर्म भी ज्ञानोचित, दूसरों को पावन करने वाले, उनके कल्याणार्थ तथा उन्हें सुख-शांति देने वाले होने चाहिएं। उसे परमपिता परमात्मा ही के सर्वोत्तम गुण, कर्म, स्वभाव के अनुकूल बर्तना चाहिए और वैसे ही सदा आनन्द-निमग्न, साक्षी-द्रष्टा, ज्ञान-निष्ठ, अव्यक्त तथा मान-अपमान आदि द्वंदों से न्यारा होकर बर्तना चाहिए। उसे यह भी ध्यान रखना चाहिए कि यह सृष्टि मेरे परमपिता की ही है और उसे पावन तथा सुखी रखने की मुझ पर भी कुछ जिम्मेदारी है। उसे यह स्मृति में रखना चाहिए कि परमपिता परमात्मा तो धर्म, पवित्रता तथा दैवी सम्पत्ति

की ही स्थापना का दिव्य कर्म करते हैं, अतः मुझे कोई भी ऐसा संकल्प, वाद अथवा कर्म नहीं करना चाहिए जो कि अधर्म, अनाचार, आसुरी व्यवहार अथवा किसी विकार का प्रसार या प्रचार करने वाला हो। इस प्रकार परमपिता परमात्मा की सूक्ष्म-स्मृति रूपी हैण्डल अथवा ब्रेक से अपने जीवन रूपी गाड़ी को ईश्वरीय नियम की पटरी पर रख कर चलाने वाला व्यक्ति ही योगी है। ऐसे ही व्यक्ति के बारे में हम कह सकते हैं कि उसका सम्बन्ध परमपिता परमात्मा से जुटा हुआ है वरना जिस व्यक्ति के संकल्प, वचन अथवा कर्म परमपिता परमात्मा के गुण, कर्म तथा स्वभाव के विरुद्ध अथवा विपरीत हैं, वह भले ही परमात्मा की भक्ति या पूजा करता हो, उसके बारे में हम यह नहीं कह सकते कि उसका संबंध जुटा हुआ है बल्कि उसे तो 'ईश्वर-द्रोही' अथवा 'विपरीत बुद्धि' ही मानेंगे। जिस मनुष्यात्मा का संबंध परमात्मा से जुटा हुआ है वह तो परमात्मा से प्रीति-बुद्धि ही होगा और प्रीति-बुद्धि वाला व्यक्ति कभी भी ईश्वर के गुणों तथा कर्मों के विरुद्ध कर्म नहीं कर सकता।

परमपिता परमात्मा की श्रेष्ठ मत पर चलने वाला योगी

हर-एक मनुष्य का यह लौकिक अनुभव है कि जिस बालक का सम्बन्ध अपने पिता से जुटा होता है वह अपने पिता की मत पर चलता है। मत न लेकर मन-मानी करना तो यह सिद्ध करता है कि बालक को पिता का, सेवक को स्वामी का, शिक्षार्थी को शिक्षा का, पुरुषार्थी को मार्गप्रदर्शक का जो सम्मान होना चाहिए तथा उसके प्रति जो स्नेह होना चाहिए वह नहीं है। अर्थात् उसका शारीरिक सम्बन्ध भले ही हो, हार्दिक अथवा मानसिक सम्बन्ध नहीं है। अतः परमप्रिय परमपिता परमात्मा से सम्ब्रन्ध जोड़ने का भी भाव यह है कि हम उसकी श्रेष्ठ मत पर चलें। यही कारण है कि परमपिता परमात्मा न केवल मनमनाभव मामेव बुद्धि निवेश्य,मामेकं शरणं ब्रज (अर्थात् मेरी स्मृति में स्थित होवो और मेरे प्रति-अर्पणमय होवो।) आदि का आदेश देते हैं, बल्कि दह यह भी कहते हैं कि 'तू मेरी **मत के अनुसार चल,** मैं तुझे ऐसी उत्तम मत दूँगा जिससे कि तू संसार सागर को लांघ कर मुक्ति तथा जीवन्मुक्ति को प्राप्त कर लेगा।" अतः योग-युक्त होने का अर्थ मनुष्य मत या माया की मत पर न चलकर एक परमपिता परमात्मा ही की सर्वश्रेष्ठ मत पर चलना है।

परमपिता परमात्मा से वास्तविक योग तभी सम्भव है जब परमात्मा का अवतरण हो

योग का जो सरल और सत्य अर्थ हमने ऊपर बताया है, उससे स्पष्ट है कि यह योग तभी सम्भव है जब परमपिता परमात्मा अवतरित होकर अपने नाम, रूप, धाम, गुण, कर्म, स्वभाव, प्रभाव,सम्पत्ति आदि का सच और सम्पूर्ण परिचय (ज्ञान) दें, उस परिचय का प्रैक्टीकल **अनुभव** करायें और अपनी **श्रेष्ठमत** भी बतायें। जब तक परमपिता परमात्मा स्वयं अवतरित न हों तब तक मनुष्य को सत्य ज्ञान नहीं हो सकता और आत्मा का परमपिता परमात्मा से सही तथा प्रैक्टीकल सम्बन्ध तथा स्नेह भी नहीं जुट सकता और आत्मा को पूरा मार्ग-दर्शन या मत भी प्राप्त नहीं हो सकता। इसी कारण गीता के भगवान् के महावाक्य हैं कि- 'हे वत्स, पहले भी यह **योग मैंने सिखाया था,** बाद में इसका प्रभाव तो रहा परंतु समयान्तर में यह योग प्रायः लुप्त हो गया; अतः अब पुनः मैं यह गुह्यतम और सर्वोत्तम योग तुम्हें सिखलाने के लिए अवतरित हुआ हूं। इस योग के बारे में तू मेरे ही वचनों को सुन।" स्पष्ट है कि यह योग मनुष्यों द्वारा अनेक प्रकार के हठयोग, तत्त्वयोग, राजयोग आदि आदि से न्यारा है। इस योग का अर्थ परमपिता परमात्मा ही के स्वरूप के **ज्ञान** के आधार पर मन को उनकी **स्मृति** में स्थित करना, स्वयं को उनके **अर्पण करना,** उनके **श्रेष्ठ मत पर चलना,** स्वयं में **दैवी सम्पत्ति** की धारणा करना अर्थात् परमपिता परमात्मा ही से अपना स्नेह, सम्बन्ध और स्मृति जोड़ना है। यही योग सर्वोत्तम है और मुक्ति तथा जीवन्मुक्ति रूपी ईश्वरीय जन्म-सिद्ध अधिकार देने वाला है। इसकी भेंट में अन्य सभी प्रकार के योग मनुष्य-कृत हैं और उन द्वारा केवल अल्पकाल ही के लिए स्वास्थ्य, सुख या शान्ति की प्राप्ति होती है।

यह योग अति सहज है

परमपिता द्वारा सिखाये गये उपरोक्त योग का अभ्यास करने के लिए मनुष्य को कोई आसन, प्राणायाम या हठ-क्रिया आदि नहीं करनी पड़ती, न ही उसके लिए घर-बार आदि छोड़ना पड़ता है बल्कि प्रवृत्ति में बर्तते

(शेष पृष्ठ ३२ पर)

आध्यात्मिक सेवा समाचार

इन्दौर—ईश्वरीय विश्वविद्यालय के मुख्यालय माऊंट आबू में योग-शिविर करके आए शहर के विशिष्ट व्यक्तियों का एक 'स्नेह-मिलन' का कार्यक्रम रखा गया जिसमें दिल्ली क्षेत्र के राजयोग-केन्द्रों की निदेशिका दादी हृदयमोहिनी जी पधारीं। लगभग १०० व्यक्तियों ने भाग लिया जिनमें हाईकोर्ट जज, डिस्ट्रिक्ट जज, मजिस्ट्रेट, वकील, इन्कमटैक्स कमिश्नर, पी.एस.सी. के चेयरमैन तथा सदस्यगण, प्रमुख डॉक्टर्स, उद्योगपति, बार एसोसिएशन के अध्यक्ष, कलैक्टर तथा एस.पी. की पत्नियां, लघु उद्योग संस्था इन्दौर के निदेशक, सम्पादक, कॉलेज के प्राचार्य आदि सम्मिलित थे। दादी जी ने सम्बोधित करते हुए अपने दिव्य साक्षात्कार का अनुभव सभी को सुनाया। तत्पश्चात् कार्यक्रम में पधारे हुए सभी व्यक्तियों का रात्रि को ब्रह्मा-भोजन भी हुआ। इस प्रकार इस कार्यक्रम से सम्पर्क वाले तथा अन्य विशिष्ट व्यक्तियों की अच्छी ज्ञान-सेवा हुई। □

रांची—सेवाकेंद्र के द्वारा सार्वजनिक बस पड़ाव के परिसर में स्थित श्री गोवर्धनधारी मंदिर में चार-दिवसीय विश्व-नव-निर्माण आध्यात्मिक प्रदर्शनी का आयोजन किया गया। प्रदर्शनी के माध्यम से विभिन्न वर्गों और धर्मों की आत्माओं को शिवबाबा का परिचय दिया गया। इस प्रदर्शनी का समाचार स्थानीय दैनिक समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुआ। इसके अतिरिक्त विशाल रथ-यात्रा के शुभ अवसर पर जगन्नाथपुर में विश्व-नव-निर्माण प्रदर्शनी का आयोजन किया गया। इस प्रदर्शनी द्वारा लगभग १५,००० आत्माओं ने परमात्मा का परिचय प्राप्त किया। रातू मेले में, रातू के भूतपूर्व महाराजा के गढ़ के सामने 'चरित्र-निर्माण एवं राजयोग प्रदर्शनी' का आयोजन किया गया जिसको विभिन्न धर्मों की आत्माओं ने देखा तथा ज्ञान लाभ लिया। □

रॉयपुर—पिछले मास रॉयपुर सेवाकेंद्र से लगभग ३० अति-विशिष्ट व्यक्ति योग-शिविर हेतु माऊंट आबू गये थे। इन सभी विशिष्ट व्यक्तियों का तथा अन्य स्थानीय गणमान्य व्यक्तियों का एक प्रेरणादायक विचार गोष्ठी एवं स्नेह-मिलन का आयोजन किया गया। इस अवसर पर ब्रह्माकुमार ओमप्रकाश जी इन्दौर से पधारे। आपने अपने सारगर्भित विचार व्यक्त किए और सबको समय की पहचान देते हुए परमपिता परमात्मा को याद करने के लिए विशेष प्रेरणाएं दीं। □

जयपुर (राजापार्क)—समाचार मिला है कि सेवाकेंद्र द्वारा हरिश्चंद्र माथुर लोक प्रशासन संस्थान में डॉ. हाइडी, निदेशक, मनोवैज्ञानिक केन्द्र, हैमबर्ग (जर्मनी) की वार्ता हुई। इसके अलावा भारतीय लोक प्रशासन संस्थान के निमंत्रण पर राजस्थान विश्वविद्यालय में भी डॉ. हाइडी की वार्ता हुई। इन्डो-जर्मन सोसाइटी में भी इनका कार्यक्रम चला। वहां पर इंजीनियरिंग कॉलेज के प्राध्यापक, जर्मन के प्राध्यापक उपस्थित थे। इस तरह डॉ. हाइडी के पधारने पर जयपुर में अनेक आत्माओं की रूहानी सेवाएं हुईं। □

सेंधवा—सेवाकेंद्र की ओर से ग्राम पिपराटा में प्रवचन का कार्यक्रम रखा गया था जिसमें १००० आत्माओं ने ज्ञान लाभ लिया और नियमित गीता पाठशाला खोलने का भी निमंत्रण मिला। इसके अलावा तैलून ग्राम में आध्यात्मिक प्रदर्शनी का आयोजन किया गया। प्रदर्शनी का उद्घाटन वहां के सरपंच हरीराम द्वारा हुआ। □

भैरवा (नेपाल)—समाचार मिला है कि नेपाल के सुप्रसिद्ध सन्त श्री जगद्दाचार्य १००८ नेपाली बाबा स्थानीय सेवाकेंद्र पर पधारे। उन्हें ईश्वरीय विश्वविद्यालय की गतिविधियों से अवगत कराया गया, जिसे सुनकर वे बहुत ही प्रसन्न हुए। बाद में उन्होंने अपने काठमान्डू स्थित प्रधान मठ में पधारने का निमंत्रण दिया। □

धार—समाचार मिला है कि तहसील सरदारपुर में एक चरित्र-निर्माण आध्यात्मिक प्रदर्शनी का आयोजन किया गया जिसका उद्घाटन नगरपालिका अध्यक्ष भ्राता कैलाश शर्मा जी द्वारा सम्पन्न हुआ। इस प्रदर्शनी को अनेक आत्माओं ने देखा तथा परमप्रिय परमपिता परमात्मा का मधुर परिचय प्राप्त किया। साथ-साथ बड़वेली नामक गांव में भी प्रदर्शनी का आयोजन किया गया। □

तिनसुकिया—नगर-नगर और गांव-गांव में भोलेनाथ शिवबाबा का भोले बच्चों को संदेश देने हेतु एकता वर्ष के उपलक्ष्य में एक 'विश्व-एकता साईकिल-यात्रा' का आयोजन किया गया। इस अवसर पर तिनसुकिया में एक समारोह का आयोजन किया गया। इस समारोह में जिला एवं सत्र न्यायधीश भ्राता प्रशाद कुमार ठाकुर जी तथा भ्राता श्याम सुंदर मोदी जी, अध्यक्ष, नेशनल चेम्बर ऑफ कॉमर्स विशेष अतिथि के

रूप में पधारे । आप लोगों ने साईकिल-यात्रियों को प्रोत्साहन देकर यात्रा की सफलता की कामना की । १० दिन की यात्रा करते यात्रीगण जौरहाट पहुंचे । वहां भी सारे नगर में शांति-यात्रा निकाली गई । शाम को एक समारोह का आयोजन किया जिसमें यात्रियों का स्वागत हुआ । इस यात्रा द्वारा अनेक गांवों में प्रदर्शनी व स्कूलों में कार्यक्रम रखे गए जिससे अनेक आत्माओं को ईश्वरीय संदेश मिला। □

फ़िरोज़पुर सिटी—सेवाकेंद्र की ओर से ममदोट गांव में विश्व-नव-निर्माण आध्यात्मिक प्रदर्शनी लगाई गई जिसका उद्घाटन भ्राता सरदार हरिसिंह, सरपंच ने किया । वहां की जनता ने बहुत उत्साह दिखाया । यहां पर ज्ञान-योग-शिविर तथा राजयोग शिविर भी कराया गया । इससे गांव की अनेक आत्माओं ने लाभ उठाया। □

गुना—शहर की विशाल मण्डी के प्रांगण में भोपाल बोर्डिंग के बाल कलाकारों द्वारा ''सबसे महान-शक्ति'' नामक नाटक खेला गया जिसे देखने के लिए शहर के गणमान्य व्यक्ति तथा हज़ारों की संख्या में जनता पधारीं । इस अवसर पर ब्रह्माकुमारी बहनों के प्रवचन भी हुए। इस तरह अनेक आत्माओं को ईश्वरीय संदेश दिया गया। □

आगरा—सेवाकेंद्र की ओर से कई स्थानों पर 'शांति सम्मेलन' का आयोजन किया गया और साथ ही साथ 'सबसे महान-शक्ति' नाटक का कार्यक्रम भी चला । ताजगंज, नौलक्खा, शमशाबाद, पिनाहट आदि स्थानों पर ये कार्यक्रम आयोजित किए गए जिनसे हजारों आत्माओं की रूहानी-सेवा हुई।

ग्राम सेवा के अन्तर्गत मातानगर, महू, नगलापदी, रुनकता, इटौरा, अकोला आदि स्थानों परं प्रदर्शनी का आयोजन किया गया । इन कार्यक्रमों के फलस्वरूप ३ गांवों में ज्ञान-योग की नियमित क्लास आरम्भ हो गई है। □

भोपाल—ज़ोन में विभिन्न स्थानों पर आध्यात्मिक कार्यक्रमों व भव्य नाटकों का सफल आयोजन दिनांक ७ जून से ३० जून, १९८७ तक किया गया जिससे हजारों की संख्या में लोगों ने लाभ उठाया तथा कई व्यक्ति नियमित ज्ञान लाभ ले रहे हैं । उक्त नाटक छोटे-छोटे बच्चों द्वारा बड़ी ही सुंदरता व कुशलता के साथ खेले गये थे । फलतः सभी जगह के क्लबों व सामाजिक संस्थानों ने इसे बहुत पसन्द किया और बच्चों को श्रेष्ठ अभिनय के लिए पुरस्कृत भी किया। □

ग्वालियर (इन्द्रगंज़)—सेवाकेंद्र की ओर से एक 'मानव एकता आध्यात्मिक सम्मेलन' का आयोजन किया गया । कर्नल साहब भ्राता हरिकृष्ण जी भी इस कार्यक्रम में शामिल हुए । इस सम्मेलन के अंत में बाल-कलाकारों द्वारा एक बहुत सुंदर नृत्य नाटिका 'सबसे महान-शक्ति' दिखाई गई जिसे देखने के लिए अपार जनसमूह उमड़ पड़ा। □

हाथरस—सेवाकेंद्र द्वारा ग्राम सेवा अभियान के अंतर्गत ग्राम झगरार में वहां के प्रधान के निमंत्रण पर आध्यात्मिक प्रदर्शनी एवं शांति सम्मेलन का आयोजन किया गया। आसपास के ५ गांवों में झांकी सजाकर शोभा-यात्रा भी निकाली गई। इस यात्रा के फलस्वरूप हज़ारों आत्माओं ने प्रदर्शनी देखी तथा सर्व आत्माओं के परमपिता परमात्मा का परिचय प्राप्त किया । रात्रि के समय 'स्वर्ग में एक सीट खाली' नाटक प्रस्तुत किया गया । उपरोक्त कार्यक्रम के फलस्वरूप ग्राम झगरार में गीता पाठशाला खुल गई है। □

बालेश्वर—सेवाकेंद्र के वार्षिकोत्सव पर एक आध्यात्मिक समारोह का विशेष कार्यक्रम सम्पन्न हुआ । वहां के सुप्रसिद्ध डॉ. भ्राता विजय कुमार गिरी जी तथा प्रिंसीपल, राजकीय प्रशिक्षण कॉलेज ने इस कार्यक्रम में विशेष रूप से भाग लिया । इस कार्यक्रम को अनेक आत्माओं ने देखा और लाभ उठाया। □

रतनगढ़—यहां के जनरल अस्पताल में 'योग से रोग दूर' विषय पर प्रवचनों का विशेष कार्यक्रम रखा गया जिसमें लगभग २० चिकित्सक तथा ६० नर्सें सम्मिलित हुईं । प्रवचनों से प्रभावित होकर त्रि-दिवसीय राजयोग-शिविर के लिए भी निमंत्रण मिला है। □

रूद्रपुर—नगर के आसपास के गांवों में आध्यात्मिक प्रदर्शनियों तथा वीडियो-फ़िल्म के कार्यक्रमों द्वारा अनेक आत्माओं को ईश्वरीय सन्देश दिया गया जिसमें भगवानपुर, रामनगर, देवरिया तथा हल्दी व पंतनगर, गढ़कोटा आदि गांवों की जनता को विशेष लाभ हुआ ।

शहर के आवास-विकास के समीप अटरिया मेले में राजयोग पथ प्रदर्शनी एक सप्ताह के लिए लगाई गई । इस प्रदर्शनी को हज़ारों आत्माओं ने देखा और राजयोग के पथ पर चलने की प्रेरणा ली । फलस्वरूप कई आत्माएं साप्ताहिक ज्ञान-योग के कोर्स के लिए सेवाकेंद्र पर आ रही हैं। □

विसनगर (गुजरात)—में रथ-यात्रा के दिन झांकी और प्रदर्शनी द्वारा हजारों आत्माओं को ईश्वरीय संदेश दिया गया ।

विसनगर तहसील के सरपंचों की मीटिंग में भी प्रवचन द्वारा दिव्य संदेश दिया गया । इसके अलावा खदलपुर, गुद्रासण खडोसण, चालड़ी गांवों में भी आध्यात्मिक प्रदर्शनी, प्रवचन और योग-शिविर के कार्यक्रमों का आयोजन किया गया । परिणामस्वरूप दो जगह ज्ञान-योग की क्लास नियमित रूप से चल रही है। □

तमलूक (मिदनापुर)—सेवाकेंद्र के दूसरे वार्षिकोत्सव समारोह का उद्घाटन वहां के कॉलेज के प्रिंसीपल ने दीप प्रज्वलित कर किया । इस कार्यक्रम में लगभग २०० प्रतिष्ठित व्यक्ति उपस्थित थे जिनमें डॉक्टर, प्रोफेसर, अध्यापकगण तथा व्यापारी आदि सम्मिलित थे । इसके अतिरिक्त रथ-यात्रा के अवसर पर महसावल तथा डीमारी नामक स्थानों पर दो-दिवसीय आध्यात्मिक प्रदर्शनी का आयोजन किया गया । इस प्रदर्शनी को अनेक आत्माओं ने देखा और ज्ञान लाभ लिया। □

मेहसाना—योगनुयोग रथयात्रा के शुभ दिवस पर वडनगर की जनता को ईश्वरीय संदेश पहुंचाने हेतु राधेकृष्ण और लक्ष्मी नारायण की चैतन्य झांकी के साथ एक शांति-यात्रा का कार्यक्रम चला जिसमें लगभग ३०० की संख्या में श्वेत वस्त्रधारी ब्राह्मणकुल भूषण भाई-बहनें शामिल हुए । धार्मिक सहिष्णुता, शांति के लिए राजयोग तथा व्यक्ति सुधार द्वारा विश्व-एकता का संदेश देती हुई यह शांति-यात्रा तथा भव्य झांकी गुजरात के इस अति प्राचीन और मशहूर नगर के नगरजनों का आकर्षण केंद्र बन गई। इसके अलावा मेहसाना के निकटवर्ती गांवों लाखवड़, जगुदन तथा विरमपुर में वीडियो-फ़िल्म 'ज्ञान-गंगा' दिखाई गई जिस द्वारा लगभग ५००० आत्माओं ने मनोरंजन के साथ-साथ ईश्वरीय संदेश प्राप्त किया। शेलावी, हेबुवा तथा लणवा गांवों में 'विश्व-नव-निर्माण प्रदर्शनी' के कार्यक्रम आयोजित किए गए जिससे लगभग २००० आत्माओं को ज्ञान लाभ मिला। □

नरेला (दिल्ली)—सेवाकेंद्र की ओर से गांव के सरपंचों एवं प्रधानों का एक 'आध्यात्मिक स्नेह-मिलन' का कार्यक्रम सफलतापूर्वक आयोजित किया गया। दिल्ली क्षेत्र के सेवाकेंद्रों की संचालिका दादी हृदयमोहिनी जी के 'सर्व के सहयोग से सुखमय संसार' विषय पर प्रेरणादायक प्रवचन को सुनकर सभी लोग बहुत प्रसन्न हुए। इस कार्यक्रम में लगभग ५० गांवों के सरपंचों तथा प्रधानों ने भाग लिया। दिल्ली नगरनिगम के सांसद भ्राता जनार्दन शर्मा जी तथा नरेला के आर्यसमाज के प्रधान वैद्य कर्णवीर जी इस कार्यक्रम के मुख्य अतिथि थे। परिणामस्वरूप कुछ गांवों के प्रधानों से अपने-अपने गांवों में ईश्वरीय सेवाकेंद्र खोलने के लिए निमंत्रण मिले हैं। □

बम्बई (गामदेवी)—"हैप्पी होम स्कूल फॉर द ब्लाइंड" नामक अंधविद्यालय के अध्यापकगण और विद्यार्थीगण को राजयोग-शिविर कराया गया । अभी वहां पर सप्ताह में एक बार ज्ञान-योग की क्लास चलती है । इसके अतिरिक्त विश्व प्रसिद्ध संगीत निर्देशक भ्राता नौसाद अली जी तथा भ्राता दत्तात्रेय जी को ईश्वरीय ज्ञान तथा राजयोग की अनुभूति कराई गई जिससे उनको असीम शांति मिली। □

हटा (दमोह)—उप-सेवाकेंद्र द्वारा ६ दिन की 'चरित्र-निर्माण आध्यात्मिक प्रदर्शनी' का आयोजन किया गया जिसका उद्घाटन वहां के सिविल जज भ्राता आर.एस. ठाकुर जी ने किया । क्षेत्रीय विधायक भ्राता रामकृष्ण जी कुसमरिया मुख्य अतिथि के रूप में पधारे। इस प्रदर्शनी को लगभग २००० आत्माओं ने देखा और राजयोगी बनने की प्रेरणा ली। इस प्रदर्शनी के फलस्वरूप अनेक आत्माएं स्थानीय सेवाकेंद्र पर ज्ञान-योग की क्लास में नियमित रूप से आ रही हैं। □

कोल्हापुर—ज्ञात हुआ है कि कोल्हापुर जिला बार एसोसिएशन में 'वर्तमान विश्व की समस्याओं का समाधान आध्यात्मिक रीति-से कैसे किया जाए', इस विषय पर लगभग १५० वकीलों के समक्ष ब्रह्माकुमारी बहनों के प्रवचन हुए। इसके अलावा 'सर्व के सहयोग से सुखमय संसार की स्थापना कैसे हो' इस विषय पर भी प्रवचन हुए। □

पुरी—ग्राम-सेवा अभियान के अंतर्गत कई गावों के सरपंचों को आमंत्रित किया गया। उनको 'गांवों में एकता और शांति कैसे कायम की जाए' इस विषय पर समझाया गया। इस अवसर पर ब्लॉक विकास अधिकारी, चेयरमैन तथा सरपंचों ने ब्रह्माकुमारी बहनों के प्रवचनों को ध्यान से सुना तथा उसको अपने जीवन में अपनाने का दृढ़ संकल्प किया। इसके अलावा नारी सेवा सदन के वार्षिकोत्सव पर ब्रह्माकुमारी बहनों को निमंत्रण मिला। बहनों ने वहां पर ज्ञान और योग के बारे में अपने विचार रखे तथा यह भी बताया गया कि गृहस्थ व्यवहार में रहते हुए परमात्मा की याद से अपने जीवन को उच्च और श्रेष्ठ कैसे बना सकते हैं।

शेष पृष्ठ १४ पर

गीत

आया कितना पर्व सुहाना...

□ले.-ब्र.कु. रश्मि बहन, गोरेगांव, बम्बई

आया कितना पर्व सुहाना
राखी लेकर आई बहना
बंधवाले जो धागा इसका
धुल जाये मैल उसी के मन का
आया कितना...

शिवपिता की है यह राखी
सबसे न्यारी, अनोखी प्यारी
करती रक्षा पवित्रता की
कर दे राख मलीनता सारी
सुख-शांति का नारा लेकर
आया कितना...

प्रेम-शांति और पवित्रता का
पहनाए सबको यह गहना
यही तिलक इस दिव्य-स्मृति का
आत्म भाई-भाई बन रहना
दिव्य-मधुर वाणी सिखलाने
आया कितना...

मोल है देखो इसका कितना
परमपिता का है यह कहना
कभी न भूलो इस बंधन को
राखी के पावन कंगन को
ऐसा पावन है मनभावन
आया कितना... □

पृष्ठ २३ का शेष

मैं कौन हूँ

प्रसंगों में भिन्न-भिन्न अर्थ ले और उस अर्थ को लेते समय एक विशेष प्रकार के सुख, दुःख सहानुभूति आदि का अनुभव उसे हो, ऐसा कभी नहीं होता। उदाहरण के तौर पर किसी तुला या तराजू पर यदि हम हाथ रख दें तो वह यह तो प्रगट कर देगा कि उस पर कुछ वज़न पड़ गया है परन्तु वह यह भाव प्रगट नहीं कर सकता कि वह हाथ उस तराजू पर गलती से पड़ गया है या तराजू को ठीक करने के लिए रखा गया है या किसी अन्य कारण से रखा गया है। परन्तु चेतन सत्ता में यह गुण है कि यदि कोई मनुष्य किसी के सिर पर हाथ रखता है तो वह इस बात पर भी विचार करती है कि वह हाथ आशीष देने के लिए रखा गया, स्नेह प्रकट करने के लिए रखा गया, सिर को दबा कर सहलाने के विचार से रखा गया या अपमानित करने के भाव से रखा गया है और वह चेतन सत्ता उस भाव का अनुभव भी करती है।

अतः स्पष्ट है कि अनुभव आदि का गुण मस्तिष्क में नहीं है बल्कि जैसे आँख देखने के लिए और कान सुनने के लिए चेतन आत्मा के **साधन मात्र हैं**, वैसे ही मस्तिष्क भी सोचने, विचारने, अनुभव करने आदि के लिए आत्मा का एक साधन है परन्तु सोच, विचार और अनुभव करने वाली तो आत्मा ही है। आत्मा शरीर और मस्तिष्क दोनों से अलग एक नित्य सत्ता है और 'मैं' शब्द आत्मा ही का वाचक है। □

पृष्ठ २८ का शेष

योग का अर्थ क्या है

हुए वह योग-युक्त हो कर मुक्ति तथा जीवन्मुक्ति की प्राप्ति कर सकता है। हम देखते हैं कि बच्चा जब छोटा होता है तो उसका सम्बन्ध अपने माता-पिता से ही होता है। थोड़ा और बड़ा होकर बहन भाइयों तथा सहपाठियों और सखाओं से भी उसका स्नेह तथा सम्बन्ध जुट जाता है। और बड़ा होने पर जब उसका विवाह होता है तब उसका स्नेह अन्यान्य नातेदारों से थोड़ा कम होकर पत्नी में हो जाता है। फिर जब उसके बच्चे पैदा होते हैं तो पत्नी में भी थोड़ा कम होकर बच्चों ही से उसका स्नेह अधिक हो जाता है। इससे स्पष्ट है कि मनुष्य का यह तो जन्म-जन्मान्तर से अभ्यास है कि वह अपना स्नेह एक व्यक्ति से हटा कर अथवा कम करके दूसरे से अधिक जुटा लेता है। अतः अब योग-आकांक्षी को करना केवल यही है। सम्बन्ध और स्नेह को एक से कम करके दूसरे के साथ जोड़ने का उसको जो अभ्यास है, उसके प्रयोग से अब वह अपना मानसिक सम्बन्ध और अनन्य स्नेह परमप्रिय परमात्मा से जोड़े। इस सहज विधि से उसे योग के लक्ष्य की सहज ही सिद्धि प्राप्त हो सकती है। □

जगदीश चन्द्र हसीजा, मुख्य सम्पादक, ब्र.कु. आत्म प्रकाश, सम्पादक B-7/27 कृष्णानगर, दिल्ली द्वारा सम्पादन तथा ओमशांति प्रेस, कृष्णानगर, देहली-५१ से छपवाया। Regd No. 10563/65-D, (E)—70